गृहस्थ

लेखक

धर्मपाल कपूर

बी०ए० ऑनर्स, एम०ए०

कोठी नं. 1135, सैक्टर 11,
पंचकूला-134112 (हरियाणा)
फोन : 0172-2567845
मोबाइल : 9356301618

संस्करण : 2018
प्रतियाँ : 1000

धर्मपाल कपूर
बी.ए. ऑनर्स, एम.ए.
कोठी नं. 1135, सैक्टर 11,
पंचकूला-134112 (हरियाणा)
फोन : 0172-2567845
मोबाइल : 9356301618

टंकण एवं साजसज्जा : **अभिनव इंटरप्राइजिज, मो. 94683 40497, 81684 90221**
मुद्रक : **यू०आर०बी० प्रिंटिंग प्रैस, शैड नं. 2, रतपुर कॉलोनी, पिंजौर,**
मो. 9466111730, 9466112730

दो शब्द

भद्र आत्माओ !

हमारे पूर्वजों ने हमारे लिए चार आश्रमों का निर्माण किया हैं वे हैं – ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास । इन चारों आश्रमों से गृहस्थ को सर्वज्येष्ठ एवं सर्वश्रेष्ठ आश्रम माना गया है क्योंकि शेष तीनों आश्रम गृहस्थ पर ही आधारित हैं और इससे ही सृष्टिसृजन् होता है । वस्तुतः गृहस्थ का श्रीगणेश विवाहोपरांत श्रद्धा एवं विश्वास से होता है और इसकी इति समर्पण पर हो जाती है क्योंकि विवाह के पश्चात् जीवन पर्यन्त बहुत बड़ा उत्तरदायित्व निभाना पड़ता है । विभिन्न ग्रंथों में भी गृहस्थमहिमा का गुणगान किया गया है ।

हम देखते हैं कि आज अधिकांश गृहस्थों में सुख, शांति और आनन्द नहीं है । इसके मुख्य कारण हैं – स्वभाव व शिक्षा दोष, धन की कमी, संतोष का अभाव, मोहममता में संलिप्त, चरित्रदोष, व्यसनदोष, व्यक्तिवाद, सहनशीलता का अभाव, अति कामवासना, दहेज का अभिशाप, तलाक़, मानवता का अभाव आदि ।

अब प्रश्न उठता है कि गृहस्थ में, सुख, शांति, आनन्द कैसे आये? इसमें मुख्य साधन हैं–अभिवादन एवं आशीर्वाद, आज्ञापालन, सहनशीलता, अनुशासन, श्रम, सेवा, प्रेम, शिष्टाचार, आदर, मितव्ययिता, आध्यात्मिक वातावरण आदि । तत्त्वतः लगभग आज 95% गृहस्थ अपने बच्चों से इस कारण दुःखी हैं क्योंकि अधिकांश माता-पिता अपने बच्चों को न ही समय देते हैं और न ही संस्कार । यदि माता-पिता आरम्भ से अपने बच्चों को समय एवं संस्कार दें तो गृहस्थ में अत्यधिक सुख एवं शांति स्थापित हो सकती है । वास्तव में प्रत्येक व्यक्ति के जीवन को सुखी बनाने के लिये मुख्य उपाय हैं– (1) सकारात्मक सोच, (2) परमात्मा की रजा में रहना, (3) वर्तमान में रहना, (4) प्राप्त को पर्याप्त समझना आदि ।

प्रस्तुत पुस्तक लिखने में मुझे सर्वश्री लालचंद चौहान, रोशन लाल

अग्रवाल, नरेश बंसल, जय किशन ने सहयोग प्रदान किया है। मैं इन सबका इस शुभकार्य के लिए अत्यंत कृतज्ञ हूँ। इसके अतिरिक्त मैं उन सभी लेखकों एवं कृतिकर्ताओं का भी अत्यंत धन्यवादी हूँ जिनकी कृतियों से संदर्भ उद्धृत किये गये हैं। वस्तुतः बोलना सरल है परन्तु लिखना अत्यधिक कठिन है जैसे कि संस्कृत में एक उक्ति है–

शतं वदं एकं मा लिख

अर्थात् सौ बार कहो परन्तु एक बार भी मत लिखो। क्योंकि लेखन में यदि कोई त्रुटि रह गई तो वह तुरन्त पकड़ी जाती है और लेखक की पोल खुल जाती है। मैंने प्रस्तुत पुस्तक के लिखने में पूर्ण सावधानी बरती है। परन्तु संसार का प्रत्येक व्यक्ति अल्पज्ञ और अपूर्ण है। अतः यदि कोई त्रुटि रह गई हो तो पाठकगण उसे सुधार अथवा ठीक करने की दृष्टि से सूचित करें, न कि टीका टिप्पणी की दृष्टि से।

धर्म पाल कपूर

दिनांक : 25.08.2018

(**धर्मपाल कपूर**)
बी.ए. ऑनर्स, एम.ए.
कोठी नं. 1135, सैक्टर 11,
पंचकूला-134112 (हरियाणा)
फोन : 0172-2567845
मोबाइल : 9356301618

निवेदन

गृहस्थाश्रम बहुत ही महत्त्वपूर्ण आश्रम है क्योंकि ब्रह्मचर्याश्रम, वानप्रस्थाश्रम और संन्यासाश्रम सभी गृहस्थाश्रम पर ही आधारित हैं। गृहस्थ जीवन इतना विस्तृत और विविध प्रकार का है कि इसकी सब विधाओं का वर्णन करना विस्तार से तो दूर रहा, संक्षेप में भी कर पाना बड़ा कठिन है। इस कठिन कार्य को श्री धर्मपाल कपूर जी ने गृहस्थाश्रम पुस्तक को लिखकर गृहस्थ के महत्त्वपूर्ण पहलुओं पर प्रकाश डाला है। उनका यह परिश्रम अत्यंत सराहनीय है। पुस्तक में गृहस्थाश्रम की सार्थकता, गृहस्थ आश्रम के उत्तरदायित्व की पालना, दाम्पत्य जीवन सफल कैसे बने? उत्तम सन्तान कैसे उत्पन्न हो ? परिवार में सुख शान्ति का वातावरण कैसे बना रह सकता है? आदि विषयों पर प्रकाश डाला है।

ब्रह्मचर्य आश्रम में विद्याध्ययन के साथ-साथ ब्रह्म को जानना और विद्या प्राप्ति के बाद गृहस्थाश्रम में प्रवेश करना चाहिये। अधिकतर लोग गृहस्थाश्रम में प्रवेश करते हैं, बहुत कम लोग हैं, जो गृहस्थाश्रम को पसन्द नहीं करते। शतपथ ब्राह्मण का वचन है कि गृहसीाश्रम में प्रवेश करते ही मनुष्य दो अग्नियों को प्रदीप्त करे अर्थात् अपने परिश्रम के फल को दो दिशाओं में व्यय करे। एक घर गृहस्थी को चलाने के लिए अपने कर्त्तव्य का दृढ़तापूर्वक मन, वचन, कर्म से पालन का पूर्ण प्रयास आजीवन करता रहे और दूसरे परोपकार कार्यों को निरन्तर करता रहे । गृहस्थ में कभी आलस्य न करे।

गृहस्थ जीवन की गाड़ी को खींचने वाले पति-पत्नी हैं, जैसे बैलगाड़ी को दो बैल खींचते हैं। यदि एक बैल कमजोर हो तो दूसरा बैल जल्दी थक जाएगा। यदि दोनों बैल बराबर शक्ति लगायें तो गाड़ी अपने गंतव्य स्थान तक आसानी से पहुँच जाती है, ठीक यह स्थिति गृहस्थ रूपी गाड़ी की है। दोनों अपने-अपने कर्त्तव्यों का पालन ठीक प्रकार से करें तो गृहस्थी सुखपूर्वक चलती रहती है और यदि पति-पत्नी में से कोई एक अकर्मण्य हो तो घर में कलह होती है और सुख शान्ति नष्ट हो जाती है।

दो प्रकार के लोग इस आश्रम को ग्रहण करते हैं। एक जो विवाह करने की इच्छा रखते हैं और दूसरे जो कर्म करने की लालसा तो रखते हैं परन्तु गृहस्थ जीवन को दुःखों की खान समझते हैं। सोच अपनी-अपनी ही काम आती है। बहुत से गृहस्थ में भी सुख शान्ति का आनन्द अनुभव करते हैं। अक्सर लोग कहते हैं कि सुख कम और जीवन में दुःख ज़्यादा है। परन्तु यह वास्तविकता नहीं है। जीवन में सुख ज़्यादा और दुःख कम है। यह सब सोच के ऊपर निर्भर है।

विवाह की इच्छा भी ईश्वर की प्रेरणा से होती है। मनुष्य में कर्म करने की सामर्थ्य, शक्ति और इच्छा परमात्मा ने ही उत्पन्न की है और उस सामर्थ्य व शक्ति

को मनुष्य किस दिशा की ओर ले जाता है यह मनुष्य पर ही निर्भर करता है । जब जीवन के कार्य सर्वहितार्थ किये जायें, सब के साथ अपना भी हित सिद्ध हो जाता है । जैसे यज्ञ से सबका हित होता है और अपना भी । ठीक इसी प्रकार सन्तान उत्पत्ति भी एक यज्ञ है । उत्तम गुणयुक्त, संस्कारयुक्त सन्तान उत्पन्न की जाये तो उस से सब का हित होता है और अपना भी हित होता है । यदि एक सन्तान कुसंस्कारी हो जाये तो उससे सबका अहित हो जाता है तथा घर की सुख शान्ति भी नष्ट हो जाती है । गृहस्थ जीवन दो भागों में बँटा होता है । एक भाग गृहस्थ पालन का और दूसरा भाग लोककल्याण के लिये है ।

गृहस्थ का अपना परिश्रम भी तो परमात्मा द्वारा दिया गया है । परिश्रम शक्ति का ही स्वरूप है । शक्ति सूर्य द्वारा परमात्मा की कृपा से प्राप्त होती है । अतः गृहस्थ के लिए योग्य है कि परमात्मा के द्वारा प्राप्त इस शक्ति का सदा सदुपयोग करे, दुरुपयोग नहीं ।

जिस घर में स्त्रियों का सत्कार होता है उसमें विद्यायुक्त पुरुष होके देव संज्ञा धरा के आनन्द की क्रीड़ा करते हैं और जिस घर में स्त्रियों का सत्कार नहीं होता वहाँ सब क्रिया निष्फल हो जाती है । ऐसे कुल शीघ्र ही पतन को प्राप्त हो जाते हैं ।

जो स्त्री प्रीतिपूर्वक अपने पति को प्रसन्न करती है वही आनन्द को प्राप्त करती है । अतः स्त्री के लिए योग्य है कि वह घर के सभी कार्यों को अत्यन्त चतुराई से करे, घर की शुद्धि रखे और व्यय में अत्यन्त उदार न रहे । पाक ऐसा बनाये जो औषध रूप होकर शरीर को स्वस्थ रखे ।

उत्तम संतान पति-पत्नी पर ही निर्भर करती है । इसलिए पति-पत्नी अपने शरीर और आत्मा की उन्नति के लिए सत्याचरण को सदा अपनायें । इससे संतान भी उत्तम और शुद्ध आचरण वाली उत्पन्न होती है । मन को कदापि अधर्म की ओर न जानें दें अपितु उसे सदा सत्याचरण में ही लगाये रखें । ऐसे पति-पत्नी ही गृहस्थ के वास्तविक आनन्द को भोगते हैं । पति-पत्नी में समानता हो, वे एक दूसरे को छोटा-बड़ा कदापि न समझें । महर्षि दयानन्द ने स्त्री को जगत्जननी कहा है । अतः संक्षेप में इतना ही कहा जा सकता है कि समस्त आश्रम गृहस्थाश्रम पर ही आधारित हैं ।

लालचन्द चौहान
से.नि. राज्य विकास अधिकारी,
कोठी नं. 591/12, पंचकूला
मो. 8557057170
मो. 7508201740

विशेष सूचना

1. स्वाध्याय, मनन और आत्मसात् ।
2. पाठकगण पुस्तक पढ़ने के पश्चात् किसी भी स्वाध्यायशील मित्र को इसे देने की कृपा करें ।
3. कोई भी जिज्ञासु अपनी इच्छानुसार इसकी प्रतियाँ फोटोस्टेट करवा कर स्वाध्यायशील मित्रों में प्रचार-प्रसार के लिये बाँट सकता है ।
4. पुस्तक केवल प्रचारार्थ लिखी गई है और सदुपयोग ही इसका मूल्य है ।
5. सर्वाधिकार लेखकाधीन ।

धर्मपाल कपूर
बी.ए. ऑनर्स, एम.ए.
कोठी नं. 1135, सैक्टर 11,
पंचकूला-134112 (हरियाणा)
फोन : 0172-2567845
मो० : 9356301618

विषयसूची

क्र.सं.	विषय	पृष्ठ
1.	गृहस्थ को सफल बनाने के विशेष कृत्य	2
2.	गृहस्थमहिमा	6
3.	गृहस्थ में दुःख व क्लेश के मुख्य कारण	8
4.	गृहस्थ में सुख, शांति और आनंद के मुख्य साधन	20
5.	पति एवं पत्नी की प्रतिज्ञायें	32
6.	पारिवारिक सुख शांति का मार्ग	34
7.	दाम्पत्य जीवन की सफलता के लिये	39
8.	दाम्पत्य जीवन सफल कैसे बने ?	43
9.	दाम्पत्य जीवन की सफलता के मंत्र	49
10.	दाम्पत्य जीवन को सफल बनाने वाले कुछ स्वर्णसूत्र	51
11.	गृहस्थाश्रम की सार्थकता	57
12.	व्यभिचार से दूर रहो	62
13.	सन्तानोत्पादन भारी उत्तरदायित्व	68
14.	उत्तम संतान कैसे प्राप्त हो ?	72
15.	गृहस्थाश्रम धर्म एक योगसाधना	76
16.	गृहस्थाश्रम की श्रेष्ठता महान् है	78
17.	दाम्पत्य जीवन की सफलता	84
18.	दाम्पत्य जीवन को सुखी बनाने के स्वर्णसूत्र	87
19.	शांतिमय गृहस्थ जीवन	94

गृहस्थ

गृहस्थ आश्रम सब आश्रमों का प्राण है ।
दीन-दुखियों , अनाथ, विधवाओं का ईमान है । ।
साधु संत महात्माओं के भोगों का गान है ।
पशु पक्षी, कीट पतंग, कुत्ते, कव्वे की जान है । ।

ईश्वर विश्वास संसार की सबसे बड़ी सम्पत्ति है और ईश्वर अविश्वास संसार की सबसे बड़ी विपत्ति है । विवाह के पश्चात् गृहस्थ श्रद्धा से आरम्भ होता और समर्पण पर जाकर समाप्त होता है । सब कुछ देने का नाम समर्पण है और इसके विपरीत कुछ देने व लेने का नाम सौदेबाजी है । आज आध्यात्मिक जगत् में समर्पण का अभाव है । आचार्य श्रीराम शर्मा लिखते हैं–

पति और पत्नी दोनों मिलकर एक सम्मिलित व्यक्तित्व का निर्माण करते हैं । जीवनयात्रा इस सामूहिक व्यक्तित्व का संयुक्त उत्तरदायित्व है । इस संयुक्त उत्तरदायित्व के निर्वाह के लिए दोनों को समर्पण और आत्मदान करना होगा । –गृहस्थ : एक तपोवन पृ. 2.3

ऐसा कहा जाता है कि उद्दालक ऋषि के पुत्र श्वेतकेतु ने विवाह की संस्था का श्रीगणेश किया था । उस समय तक पुरुष पुत्र प्राप्ति के लिये किसी भी स्त्री का चयन कर सकता था । एक पुरुष के साथ एक स्त्री की सदा रहने की व्यवस्था नहीं थी । वस्तुतः विवाह सृष्टि की सर्वोत्तम व्यवस्था है । यह यौनेच्छा की पूर्ति का वैधानिक अनुज्ञापत्र ही नहीं अपितु पति एवं पत्नी का परस्पर त्याग, सहनशीलता, हृदय की निश्छल अभिव्यक्ति एवं गंभीर आत्म समर्पण का साधन है ।

यह एक प्रकार से तपोवन एवं साधना कुटीर है जिसकी सहायता से सांसारिक भोगों की निःसारता एक क्षण भंगुरता का भान होता है । अपूर्णता से पूर्णता की प्राप्ति होती है और परोपकार की मंगल भावना का विकास होता

है । चरित्र गृहस्थ का सबसे मूल्यवान धन है । इसके न रहने से पारस्परिक प्रेम ही नहीं पारिवारिक प्रतिष्ठा एवं सांसारिक प्रगति तक रुक जाती है ।

1. गृहस्थ को सफल बनाने के विशेष कृत्य

विवाह शब्द की उत्पत्ति दो शब्दों से हुई है । ये हैं वि+वाह । वि का अर्थ है विशेष और वाह का अर्थ है उत्तरदायित्व अर्थात् विवाह का अर्थ हुआ विशेष उत्तरदायित्व । अतः श्री प्रभु आश्रित लिखते हैं–

निश्चित रूप से विवाह के साथ इतने अधिक उत्तरदायित्व सिर पर आते हैं कि आदमी उनके बोझ से दबता, पिसता ही चला जाता है, उस गाड़ी को खींचने में उसका सारा कचूमर निकल जाता है, कोई बड़ी बात सोचना, कोई बड़े कदम उठाना, कोई प्रगति करना उसके लिए समय, शक्ति, चिन्तन और धन के अभाव में सम्भव ही नहीं हो पाता । जो कुछ वह है इसी गृहस्थ की भट्टी में जलता चला जाता है ।

वस्तुतः जब व्यक्ति अविवाहित होता है तो उसकी दो टांगे होती हैं परन्तु विवाह के उपरांत उसकी चार टांगें हो जाती हैं दो उसकी और दो पत्नी की । चार टांगें जानवर की होती हैं । इसके पश्चात् एक बच्चा हो जाता है तो उसकी छः टांगें हो जाती हैं । छः टांगें मक्खी की होती हैं और कुछ समय पश्चात् दूसरा बच्चा होता हो जाता है फिर उसकी आठ टांगें हो जाती हैं । आठ टांगें मकड़ी की होती हैं । तब वह व्यक्ति ऐसे मकड़जाल में फंस जाता है कि जीवन भर उसमें से कभी भी नहीं निकल सकता । परन्तु यदि वह मोहमाया को त्याग कर वानप्रस्थी या संन्यासी बन जाये तो वह अलग बात है । परन्तु ऐसा कोई बिरला व्यक्ति ही होता है ।

वेदानुसार सबसे उत्तम स्वयंवर विवाह होता है । कन्या वर की परीक्षा करे और वर कन्या की करे । जीवन भर का मेल है कोई खेल नहीं है । गुण, कर्म, स्वभाव एक जैसे न हो तो फिर बहुत दुःख उठाना पड़ता है ।

–पृथ्वी का स्वर्ग पृ. 129

आज लोगों ने विवाह के उच्च उद्देश्य एवं आदर्श को ही भुला दिया ।

अब काम-क्रीड़ा की पशुता का एक उद्‌घोषित प्रमाण पत्र विवाह रह गया है। वासना और विलासिता की दृष्टि से जोड़े मिलाये जाते हैं। लड़के रूपवती और उत्तेजक लड़कियाँ ढूंढते हैं, ताकि वासना का अधिक आकर्षण एवं उपयोग प्राप्त हो सके। लड़कियाँ उपरोक्त तथ्य के अतिरिक्त अर्थ उपार्जन के अधिक चौड़े स्रोत भी ढूंढती हैं, ताकि उन्हें विलासिता और आरामतलवी की अधिक सुविधायें मिल सकें। लड़के की कमाई और लड़की का रूप-लावण्य आज प्रधानतापूर्वक देखे जाते हैं। सोचा जाता है कि यह उपलब्धियाँ मिल जायें तो विवाह सार्थक माना जायेगा। पर यह भुला दिया जाता है कि विवाह की सफलता का आधार साथी की मनोभूमि, संस्कृति एवम् आदर्शवादिता ही है। काम-कौतुक के लिए, उपयोग के लिए विवाह नहीं किये जाते उनका प्रयोजन आध्यात्मिक है।

विवाह एक आध्यात्मिक साधना है। विवाह एक प्रेम बल्लरी का आत्मोसर्ग की उच्च भावनाओं द्वारा किया जाने वाला अभिसिंचन है। यह सज्जनों और शूरवीरों का काम है। कामी, दुष्ट, छली और विश्वासघाती लोग विवाह की पवित्र प्रथा को बदनाम करने से दूर रहें और एकाकी जीवन जियें यही अच्छा है। इस सम्बन्ध का उद्देश्य केवल जनसंख्या की वृद्धि मानकर उसके मूलभूत भाव का हनन करना है। एकाकी मनुष्य अपूर्ण है। पति-पत्नी दोनों के सम्बन्ध से एक पूर्ण व्यक्तित्व का निर्माण होता है। सभी स्त्रियों की अपनी और पुरुषों की अपनी कुछ अलग-अलग विशेषतायें होती हैं। इन दोनों के समन्वय से वे अभाव दूर होते हैं, जिनके कारण मानसिक शान्ति सांसारिक सुख-सुविधाओं का द्वार रुका पड़ा रहता है। वैयक्तिक, आत्मिक तथा आध्यात्मिक विकास के लिये किये गये इस संबंध को केवल सन्तानोत्पादन का साधन मानना कहाँ तक ठीक हो सकता है?

सन्तानों के उत्तरदायित्व से मुक्त दम्पत्ति को आत्मिक विकास, आध्यात्मिक साधना तथा समाज सेवा द्वारा परमार्थ का पुण्य कमा सकने का बहुत अवसर रहता है। ऐसे मुक्त व्यक्ति को सन्तान का तुच्छ तथा निरर्थक खेद छोड़कर समाज सेवा में लग जाना चाहिये। समाज में ऐसे बच्चों की कमी नहीं है, जिनको प्रेमपूर्ण आश्रय की आवश्यकता है। किसी भी बच्चे को

लेकर उसका समुचित पालन-पोषण कर माता-पिता का उदात्त कर्त्तव्य निभाया जा सकता है। यदि संतान-मुक्त दम्पत्ति, जन-वृद्धि की गलती करने वाले युगल की यह भूल उनकी किन्हीं सन्तानों को अपने आश्रय में लेकर हल्की करने लगे तो नई पीढ़ी का तो नव-निर्माण हो ही साथ ही समाज में बहुत अधिक बन्धुत्व-भाव का विकास होने लगे, जिससे मिलने वाली सुख-शांति अनिर्वचनीय ही होगी। संसार-मुक्त दम्पत्ति को भगवान् के दिये इस अवसर को परमार्थ कार्यों में उपयोग कर अपने जीवन को सफल तथा विवाह को सार्थक बनाना ही चाहिये। इस प्रकार एक नहीं, न जाने कितने महापुरुषों ने केवल अपनी क्षमतायें संसार की सेवा में लगाने के मन्तव्य से विवाह और सन्तानों के चक्र से अपने को बचाये रखा, अपनी सुरक्षा-शक्तियों को समाज-सेवा में लगाकर जीवन को सफल बनाया जा सकता है। एकाकी रहकर सेवा करने की अपेक्षा कहीं अच्छा है कि विवाह द्वारा दो स्त्री-पुरुष मिलकर समाज की सेवा करे, इससे जीवन में मधुरता या शक्ति की वृद्धि होगी।

विवाहित जीवन बिताना एक बड़ा उत्तरदायित्व हैं इसे उन्हीं को वहन करना चाहिये जो वर-वधू अपने को इस योग्य समझते हो। साथी पर भार बनने की अपेक्षा उसे ऊँचा उठाने, आगे बढ़ाने, आवश्यक सहयोग, सहायता कर सकने में अपने को उपयुक्त समझते हों। जो अपना निज का भार नहीं उठा सकते, उन्हें दूसरे को सुखी-समुन्नत बनने की जिम्मेदारी अपने सिर पर नहीं लेनी चाहिए। अच्छा हो असमर्थ पक्ष स्वेच्छापूर्वक अविवाहित रहे। उसके स्वजन-संबंधी भी ऐसा ही परामर्श दें। असमर्थों को उकसाया-भड़काया न जाये, यह अनिवार्य न माना जाये कि हर किसी का विवाह होना ही चाहिये, सेना में भर्ती होने वाले सैनिकों की हर प्रकार जाँच पड़ताल कर ली जाती है। ठीक इसी प्रकार जिनको विवाह का उत्तरदायित्व वहन करना है, उन्हें शारीरिक, मानसिक, आर्थिक और गुण, कर्म, स्वभाव की दृष्टि से इतना समर्थ होना चाहिये कि अपना निज का भार तो स्वयं वहन कर ही सकें। साथ ही साथी के लिए आवश्यक सुविधायें भी जुटा सकें। जिन्हें पीढ़ियों तक चलने वाला रोग किसी प्रकार लग गया हो उन्हें विवाह का विचार ही छोड़ देना चाहिये। इसे अनिवार्य विषय न बनाया जाये। ऐच्छिक ही रखा

जाये । जो इच्छुक हैं उनकी भी जांच पड़ताल कर ली जाये कि वे इस भार वहन में समर्थ हैं भी या नहीं ।

विवाह के दिन तो दोनों पक्ष एक दूसरे से अपरिचित होते हैं । बाद में पहचान आरम्भ होती है । इसे सुदृढ़ बनाने के लिए चार सिद्धान्तों का दृढ़तापूर्वक निरन्तर प्रयोग करना चाहिये । (1) स्नेह, (2) सहयोग, (3) सम्मान, (4) विश्वास । आत्मीयता को सघन बनाने के ये चार स्तम्भ हैं, इन्हें जितना अधिक सम्भव हो सुदृढ़, परिपक्व एवं कार्यान्वित करना चाहिये ।

विवाह का भाव है जीवन की सबसे बड़ी जिम्मेदारी । यह गृहस्थाश्रम की आधारशिला है । हिन्दू समाज में गृहस्थाश्रम को मजबूत बनाने के लिये और विवाह को सफल करने के लिये अधोलिखित 5 विशेष कृत्य किये जाते हैं–

1. ग्रंथि बंधन – इसके अनुसार पति-पत्नी दोनों के कंधों पर रहने वाले दुपट्टों के छोरों को लेकर उनके मध्य में पुष्प, चावल, हल्दी, दूर्वा, सुपारी, रखकर गाँठ बाँध देते हैं ।

2. अश्मोरोहण – इसके अनुसार पति पत्नी दोनों ही एक पत्थर के टुकड़े पर अपना दाहिना पैर रखते हैं ।

3. पाणिग्रहण – इसके अनुसार पत्नी का दाहिना हाथ पति और पति का बांया हाथ पत्नी पकड़ती है ।

4. सप्तपदी – इसके अनुसार पति पत्नी सात बार कदम मिलाकर पैर उठाते हैं और सात बार साथ-साथ चलते हैं । पहले तीन फेरों में वधू आगे चलती है तथा शेष चार फेरों में वर आगे चलता है । परन्तु वैदिक परम्परा के अनुसार आर्य समाजी केवल चार फेरे करवाते हैं जिसमें लड़का आगे होता है । यह है कि गृहस्थ जीवन के साथ उद्देश्यों की पूर्ति दोनों कंधे से कंधा पैर से पैर, हाथ से हाथ, मन से मन मिलाकर कर्म करें । गृहस्थ में ये 7 चीजें आवश्यक हैं– आहार व्यवस्था, शारीरिक बल, बुद्धि, अर्थ-व्यवस्था, विनोद, मनोरंजन, पारिवारिक उत्तरदायित्व, गृह व्यवस्था, पारस्परिक स्नेह सद्भाव ।

5. सुमंगली – पति द्वारा पत्नी की माँग में सिन्दूर भरने अथवा मस्तक पर तिलक करने की क्रिया को सुमंगली नाम से पुकारा जाता है । हिन्दू समाज

के अनुसार उपरोक्त पाँच कृत्यों को करने के पश्चात् व्यक्ति गृहस्थी बनता है ।

संसार की सारी व्यवस्थाओं से सर्वज्येष्ठ एवं सर्वश्रेष्ठ गृहस्थ व्यवस्था है जिसमें संसार के लगभग 99% व्यक्ति गृहस्थ को अपनाते रहते हैं । समाज का आधार परिवार है । परन्तु आज परिवार खतरे में हैं । अतः इन में सुधार की आवश्यकता है । यदि आप किसी का सम्मान चाहते हो तो उसके गुण देखिये । गृहस्थाश्रम के तीन निम्नलिखित सूत्र हैं–(1) सम्मान, (2) समर्पण, (3) सहयोग ।

2. गृहस्थमहिमा

(1) वेदों में गृहस्थमहिमा – सर्वप्रथम चारों वेदों के 20,416 मंत्रों में सैकड़ों मंत्रों में गृहस्थमहिमा का गुणगान किया गया है । जैसे अथर्ववेद के 14वें काण्ड में गृहस्थमहिमा का वर्णन है । उदाहरणतः–

गृह्णामि ते सौभगत्वाय हस्तं मया पत्या जरदष्टिर्यथासः ।
भगो अर्यमा सविता परन्धिर्मह्यं त्वादुर्गार्हपत्याय देवाः ।। 14.1.50

हे स्त्री ! मैं तेरा पाणिग्रहण सौभाग्य प्राप्ति के लिए करता हूँ । मुझ पति के साथ तू वृद्धावस्था तक रह । सब देवों ने तुझको गृहस्थाश्रम चलाने के लिए मेरे हाथ में सौंप दिया है ।

अघोर चक्षुर पतिघ्नी स्योना शग्मा सुशेवा सुयमा गर्हेभ्यः ।
वीर सूदेँ वृकामा सं त्वयैधिषीमहि सुमनस्यमाना ।। 14.2.17

यह स्त्री पति के घर में आकर आनन्द से रहे, आँखें क्रोधयुक्त न करे, पति की हितकारिणी बने, धर्म नियमों का पालन करे, सबको सुख देवे, अपनी सन्तानों को वीरता की शिक्षा देवे, देवर आदि को सन्तुष्ट रखे । अन्तःकरण में शुभ भाव रखे । ऐसी स्त्री से घर सुसम्पन्न होता है ।

(2) मनुस्मृति में गृहस्थ की महिमा का वर्णन – मनुस्मृति के तीसरे अध्याय

के श्लोकोंमें गृहस्थाश्रम की महत्ता का उल्लेख किया गया है । जैसे–

यथा वायु समाश्रित्य वर्तन्ते सर्वजन्तवः ।
तथा गृहस्थमाश्रित्य वर्तन्ते सर्व आश्रमाः ।। 3.77

जैसे वायु के आश्रय से सब जीवों का वर्तमान सिद्ध होता है वैसी ही गृहस्थ के आश्रय से ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ और संन्यासी अर्थात् सब आश्रमों का निर्वाह होता है ।

यस्मात्त्रयोऽप्याश्रणिो दानेनान्नेन चाव्वहम् ।
गृहस्थेनैव धार्यन्यते तस्माज्ज्येष्ठाश्रमो गृही ।। 3.78

जिसे ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ और संन्यासी इन तीनों आश्रमियों को अन्न वस्त्रादिदान से नित्यप्रति गृहस्थ धारण पोषण करता है इसलिये व्यवहार में गृहस्थाश्रम सबसे महत्त्वपूर्ण है ।

(3) पुराणों में गृहस्थमहिमा का वर्णन – 18 विभिन्न पुराणों में 3,99,100 श्लोक हैं इनमें से सैकड़ों श्लोकों में गृहस्थमहिमा का वर्णन है ।

विष्णु पुराण –

देववत सतत साध्वी भर्तार मनुपश्यति ।
दम्पत्यो रेष वै धर्मः सहधर्म कृतः शुभः ।।

पत्नी पति को देवता समान समझे और पति पत्नी को देवी समान समझे । दोनों का धर्म और कर्त्तव्य समान है ।

पद्मपुराण –

नास्ति भार्या समं तीर्थ नास्ति भार्या सम ।
नास्ति भार्या समं पुण्य तारणाय हिताय च सुखम् ।।

पत्नी के समान कोई तीर्थ नहीं, पत्नी के समान कोई सुख नहीं, पत्नी के समान कोई पुण्य नहीं । दुःख से तरने और हित साधना करने के लिये पत्नी के समान और कोई नहीं है ।

(4) सत्यार्थप्रकाश एवं संस्कार विधि में गृहस्थाश्रममहिमा वर्णन– महर्षि दयानन्द सरस्वती लिखते हैं–

जितना कुछ व्यवहार संसार में है, उसका आधार गृहस्थाश्रम है,जो कोई गृहस्थाश्रम की निन्दा करता है, वही निन्दनीय है और जो प्रशंसा करता है,

वही प्रंशसनीय है। परन्तु गृहस्थाश्रम में तभी सुख होता है, जब स्त्री पुरुष दोनों परस्पर प्रसन्न, विद्वान्, पुरुषार्थी और सब प्रकार के व्यवहार के ज्ञाता हो। –सत्यार्थप्रकाश (चौथासमुल्लास)

वे संस्कारविधि में लिखते हैं–

"गृहस्थाश्रम संस्कार" उसको कहते हैं कि जो ऐहिक पारलौकिक सुखप्राप्ति के लिये विवाह करके अपने सामर्थ्य के अनुसार परोपकार करना और नियत काल में यथाविधि ईश्वरोपासना और गृहकृत्य करना और सत्य धर्म में ही अपना तन-मन-धन लगाना तथा धर्मानुसार संतानों की उत्पत्ति करनी।

–अथ गृहाश्रम संस्कार विधि वक्ष्यामः

3. गृहस्थ में दुःख व क्लेश के मुख्य कारण

(1) स्वभाव व शिक्षा दोष – आधुनिक गृहस्थों के दुःख का मूल कारण है गुण, कर्म और स्वभाव देखे बिना अपने पुत्र पुत्रियों का विवाह कर डालना। एक लड़के अथवा लड़की के गुण, कर्म और स्वभाव संग से जाने जा सकते हैं जो कि माता-पिता को विवाह पूर्व अवश्य देखने चाहियें। यह गृहस्थों का दारुण दुर्भाग्य है कि वे बहुधा विवाह से पूर्व कन्या अथवा वर का काम, धन, पद और रंगरूप ही देखते हैं। इसी कारण आज अधिकांश गृहस्थी अपनी औलाद से दुःखी हैं। मनु महाराज ने मनुस्मृति में गृहस्थों को चेतावनी दी है–

काममामरणात्तिष्ठेद् गृहे कन्यर्तुमत्यपि।
न चैवैनां प्रयच्छे तु, गुणहीनाय कर्हिचित्।। 9.89

माता-पिता के घर लड़की जवान होकर चाहे मृत्युपर्यन्त कुमारी बैठी रहे, यह सहन किया जा सकता है परन्तु जिसके साथ लड़की का गुण, कर्म, स्वभाव न मिले ऐसे पुरुष के साथ उसका सम्बन्ध कभी नहीं करना चाहिये। श्री तरुणसागर जी लिखते हैं–

अगर आप माँ-बाप हैं और अपने बेटे के विवाह के बारे में सोच रहे हैं तो मेरा एक सुझाव है कि आप अपने घर बहू लाना, बहुरानी मत लाना। बहू घर आएगी तो वह संस्कार लेकर आयेगी। जो कार लेकर आयेगी तो वह अपनी

सरकार लेकर चलायेगी और जो संस्कार लेकर आयेगी वह तुम्हारे बुलाने पर सर के बल चली आयेगी। बहू आयेगी व तुम्हारे बेटे को हर-रोज एक ऐसा पाठ पढ़ायेगी जो तुम्हारे जीवन को स्वर्ग बना देगा और बहूरानी आयेगी जो तुम्हें जीते जी स्वर्गीय बना देगी।

कड़वे प्रवचन (भाग-1, पृष्ठ 144)

आज पति एवं पत्नी के विभिन्न मार्ग हैं। पिता व पुत्र में अनबन है। सास और बहू में देवासुर संग्राम छिड़ा रहता है। भाई-भाई का शत्रु है। जेठानी और देवरानी एक दूसरी को देखकर भी खुश नहीं होती है। आजकल गृहस्थ में सारे झगड़े मूंछ और पूंछ के हैं। आजकल संयुक्त परिवारों के स्थान पर एकल परिवार बनते जा रहे हैं। अधिकतर लड़के लड़कियां विवाह के बाद माता-पिता से अपना अलग संसार बसा लेते हैं। इसी कारण हिन्दी के कवि श्री ओम् प्रकाश ने आधुनिक नवविवाहिता पर व्यंग्य करते हुए सत्य ही लिखा है–

मैं अपनों को छोड़कर आई हूँ; तुम भी छोड़ो अपना परिवार।
आज की नई बहू आते ही; चाहती है बसाना अपना अलग संसार।।

आजकल बच्चों की संख्या कम होने के कारण बच्चे माता-पिता के लाडले बन गये हैं और वे बच्चों की हर मांग पूरी करते हैं। इसके अतिरिक्त मध्य एवं उच्च वर्ग में अपने हाथ से काम करने की प्रवृत्ति घटती जा रही है। भोजन बनाने, बर्तन मांजने, कपड़े धोने एक झाड़ू-पोंछा लगाने के लिये नौकर रखे जाते हैं। इस प्रकार लड़कियों का अपने मायके में हाथ से काम करने का अभ्यास नहीं होता और जब उन्हें ससुराल जाकर ये सुविधायें नहीं मिलती तो महाभारत आरम्भ हो जाता है। पहले माता-पिता विवाह पूर्व लड़की को शिक्षा देते थे–बेटी आज हम तुम्हें डोली में बिठाकर विदा कर रहे हैं, अब पति का घर ही तुम्हारा घर है। सास-ससुर ही अब तुम्हारे माता-पिता हैं, उनकी सेवा करना तुम्हारा कर्त्तव्य है। लड़कियाँ अपने माता-पिता की सीख को बांधकर जाती थी। जबकि विवाह संस्कार में पाणिग्रहण के मंत्रों में पत्नी का हाथ पकड़ता हुआ पति बड़े भावावेश से कहता है–**गृहणामि ते सौभागत्वाय हस्तम्**

अर्थात् मैं अपने सौभाग्य की वृद्धि के लिये तेरे हाथ को ग्रहण करता हूँ।

परन्तु चार दिन की चांदनी के पश्चात् ही घर में जब अंधेरी रात आती है। दोनों की विरुद्ध मनोवृत्तियां आपस में टकराती हैं तो मन ही मन कह उठता है – **गृहीतं ते दौर्भागत्वाय हस्तम्** अर्थात् मेरा यह दुर्भाग्य था जो जीवनसाथी बनने के लिये मैंने तेरा हाथ पकड़ा। आजकल के गृहस्थी पर एक कविता देखिये–

आजकल हर गृहस्थी मुझको, दीखता परेशान है।
सूट टेरीलीन का और खोखली सी जान है।
ब्रह्ममुहूर्त में प्रभु के गीत जो गाते कभी।
शरणप्रभु की आओ रे घर घर में सुनाते थे कभी।
चारपाई पर पड़े और होता फिल्मी गान है।
प्रातः प्राणायाम कर, सौ साल तक जीते थे हम।
अति ही सुन्दर थे, जहाँ में दूध घी पीते थे हम।
अब तो खाली सुर्खियों और पौडरों में जान है।
छोटी सी एक बात पर पति पत्नी लड़ रहे।
वारते थे जान भाई, वार वे कर रहे।
न किसी की इज़्ज़त है न किसी का मान है।।
अंडा, मुर्गी, मांस को जो देखकर उल्टी करे।
आज वो उलटे हैं ऐसे, गऊ मांस से भी न डरे।
राम का तो नाम है, राक्षसों का खानपान है।।
लखन सीता और अर्जुन, उर्वशी को याद कर।
कितना ऊँचा था चरित्र, बैठा सब बर्बाद कर।
न रहे हैं बहिन भाई, न धर्म ईमान है।।
जिन्दा माँ और बाप को, पानी बिना तरसा रहे।
मरने पर हैं खूब रोते, फूल गंगा में बहा रहे।
श्राद्धों के ढोंग से, पापों का आनन्द महान् है।
जब तलक कि देश में, योगी का ना प्रचार हो।

धार्मिक विद्या न हो और शुद्ध न आहार हो ।
आशानन्द दःख और बेढंगे कहता वेद भगवान् है ।

आजकल विवाह में कोई क्या चाहता है, इसका उल्लेख शुक्राचार्य जी ने ''शुक्र नीति'' में इस प्रकार किया है –

कन्या वरयते रूपं, माता वित्तं पिता श्रुतम ।
बांधवाः कुलमिच्छन्ति, मिष्टान्नामितरेजनाः ।। 3.172

कन्या वर के सौन्दर्य को पसन्द करती है, माता वर को धनवान् देखना चाहती है, पिता वर की विद्वता को चाहता है, बन्धुजन वर के ऊँचे कुल को पसन्द करते हैं और बाराती केवल मिठाई आदि ही चाहते हैं ।

यदि आप अपने दाम्पत्य जीवन को सुखी बनाना चाहते हैं, यदि आप अपनी पत्नी के स्वस्थ विकास की क्षमता रखते हैं, अपने कर्त्तव्य और उत्तरदायित्व के प्रति सच्चे बनना चाहते हैं तो सभी प्रकार पत्नी के कार्यों में सहयोग करें । किसी कारणवश आपकी पत्नी भोजन नहीं बना पाती तो आपका कर्त्तव्य है कि आप उसी भावना से भोजन बनायें, जिस तरह प्रतिदिन आपकी पत्नी बनाती है ।

वर-वधू को चाहिए कि झूठी शर्म त्याग कर एक दूसरे के गुण, कर्म, स्वभाव का ज्ञान प्राप्त करें । समस्वभाव के विवाहित जोड़े प्रसन्न रहते हैं । यदि स्वभाव एक जैसा न हो, तो दूसरे साथी को उसका सन्तुलन करना होता है । एक सी रुचि के दो व्यक्ति जीवन में सरलता से जी सकते हैं । एक शिक्षित तथा दूसरा अशिक्षित होने से अनेक बार दृष्टिकोण में विभिन्नता तथा कटुता उत्पन्न होकर दाम्पत्य माधुर्य को नष्ट कर देती है । अतएव वर-वधू को आरम्भ में अति सावधानी एवं सतर्कता बरतने की आवश्यकता है ।

(2) धन की कमी – धन मानव जीवन का एक साधन है, क्योंकि धन से ही मानव की आधारभूत आवश्यकतायें रोटी, कपड़ा, मकान आदि की पूर्ति होती है । अनेकों युवक युवतियाँ ऐसे होते हैं जो विवाह तो कर लेते हैं, परन्तु उनकी आय का कोई साधन नहीं होता या बहुत कम होता है । इसके बाद कई अनपढ़ और मूर्ख इतने-इतने बच्चे पैदा कर लेते हैं कि वे उनका पालन-पोषण

भी ठीक ढंग से नहीं कर पाते। उन्हें गृहस्थ में प्रवेश होने का कोई भी नैतिक अधिकार नहीं है। यदि वे अपने बीवी व बच्चों का ठीक प्रकार से पालन-पोषण, शिक्षा आदि का प्रबंध नहीं कर सकते हैं क्योंकि वे तो राष्ट्र पर बोझ हैं और अनावश्यक आबादी बढ़ा रहे हैं जिसकी राष्ट्र को आज आवश्यकता नहीं। आज राष्ट्र को संयम करके आबादी रोकने की आवश्यकता है, क्योंकि अनावश्यक आबादी से ही अनेक समस्याएं पैदा होती हैं।

(3) संतोष का अभाव – संतोष शब्द की व्युत्पत्ति सम+तोष शब्दों से हुई है, जिसका भाव है समान रुचि अर्थात् वर्तमान परिस्थिति में संतुष्ट रहना और इसको बेहतर बनाने के लिये प्रयत्न करते रहना। अतः संतोष ही सर्वोत्तम सुख है। संत कबीर लिखते हैं–

गोधन, गजधन, बाजधन और रतनधान खान।
जब आवे संतोष धन, सब धन धूरि समान।।

परन्तु दुर्भाग्य से आजकल गृहस्थ में संतोष बहुत कम दिखाई देता है क्योंकि मानव ने अपनी व्यर्थ की इच्छाएं अत्यधिक बढ़ा ली हैं। गृहस्थ में सादगी, प्रसन्नता, पवित्रता, शांति, सेवा, समादर आदि बहुत कम देखने को मिलते हैं। इन गुणों की प्राप्ति के लिये प्रत्येक गृहस्थी को अपनी आय के अनुसार खर्च करना चाहिये और आपातकाल के लिये कुछ न कुछ धन अवश्य बचाना चाहिये। स्वयं को अपने ऊँचे की ओर न देखकर संतोष से अपने नीचे वाले व्यक्तियों की ओर देखकर जीना चाहिये। परन्तु अधिकतर लोग अपने ऊपर की ओर देखते हैं तभी वे दुःखी हैं। शेख फरीद शिक्षा देते हैं–

रूक्खी सूक्खी खाय कै, ठंडा पानी पीओ।
फरीदा देखि पराई चोपड़ी, ना तरसाये जीओ।।

इसके अतिरिक्त मुनिश्री तरुणसागर भी लिखते हैं–

संतोष जीवन का सबसे बड़ा धन है। जिसके पास संतोष है उसके पास सब कुछ है और जिसके पास संतोष का धन नहीं उसके पास करोड़ों रुपये होते हुए भी कुछ नहीं है। धन-दौलत व्यक्ति को सुविधाएं तो दे सकता है, परन्तु

सुख नहीं । सुखी तो वही है जो संतोषी है । तभी तो कहते हैं कि संतोषी सदा सुखी । संतोष धन के सामने सारे धन फीके हैं । लोभ का कोई अंत नहीं और जो संतोषी है उससे बड़ा कोई संत नहीं ।

—कड़वे वचन भाग 9 पृ. 97

(4) मोहममता का त्याग– प्रत्येक गृहस्थी को अपने प्रियजनों से मोहममता नहीं रखनी चाहिये, अपितु कर्त्तव्य भाव से अपना फर्ज़ पूरा करते रहना चाहिये । अपने बच्चों से मोह के स्थान पर स्नेह रखना चाहिये और किसी भी प्रयोजन चाहे अपनी धर्मपत्नी और सन्तान भी हो कुछ भी आशा न रखनी चाहिये क्योंकि यदि उन्होंने आप की आशा पूरी न की तो आपको दुःख होगा ।

परन्तु जो गृहस्थ ऐसा न करके अपनी औलाद से यह आशा रखते हैं कि बुढ़ो में वह उसकी लाठी बनेगा । यदि ऐसा हो जाये तो वे भाग्यशाली हैं परन्तु यदि ऐसा न हुआ तो उन्हें अत्यंत दुःख होता है । परन्तु आज अधिकतर गृहस्थ मोह-माया के फंदे में बुरी तरह से फंसे हुए हैं । यहाँ तक कि पुत्र के भी पौत्र हो जाने पर वे कहते हैं कि हमें तो मूल से ब्याज प्यारा है । मैं यह नहीं कहता कि अपनी औलाद से स्नेह नहीं करना चाहिये, अपितु दुःख से बचने के लिए कर्त्तव्यभाव को आगे रखकर गृहस्थ में त्यागभाव से रहना अधिक कल्याणकारी है, क्योंकि एक दिन ये सब कुछ त्याग ही इस संसार से जाना है ।

(5) चरित्रदोष – आजकल विशेषतः अत्यंत ग़रीब और उच्च परिवारों में यौन स्वच्छंदता बढ़ती जा रही है । पश्चिम के कुछ देशों में तो विवाह केवल एक दकियानूसी परम्परा बन कर रह गई है । स्त्री पुरुष जब तक चाहें साथ-साथ रहें जब चाहे अगल हो जायें और किसी के साथ रहे । चरित्रदोष के कारण ही अमेरिका में लगभग 80 प्रतिशत विवाह कुछसमय के बाद ही तलाक में बदल जाते हैं । इसी कारण वहाँ पर अधिकांश अविवाहित दम्पति (Unmarried Couples) रहते हैं और 1999 में इसी कारण लगभग 13,00,000 अवैध बालक पैदा हो गये थे । इन जोड़ों ने भी विवाहित जोड़ों

की भाँति कई बार अमेरीका में व अन्य यूरोपीय देशों में जलूस भी निकाले कि हमें भी कानूनी हक दिया जाये। परन्तु अभी तक उन्हें सफलता नहीं मिली है। यहाँ तक कि अमेरिका और यूरोप के कई देशों में आदमी आदमी से और औरत औरत से शादी कर सकते हैं जो कि अप्राकृतिक और सृष्टि के विरुद्ध है और मानवता के लिये अभिशाप है वहाँ की सरकारों को इसे शीघ्र ही गैर कानूनी घोषित कर देना चाहिये।

हमारे देश में पश्चिमी सभ्यता टेलीविजन, इंटरनैट, मोबाइल और स्मार्ट फोन के कुप्रभाव के कारण काम की समस्यायें बढ़ रही हैं। इसके विषय विशेषतः निम्नवर्ग और उच्च वर्ग के व्यक्ति में नारी शोषण अत्यधिक होता है। चरित्रदोष के कारण ही विवाह अधिकतर व्यक्तियों के लिये एक व्यापार और गृहस्थ एक भोगशाला बनकर रह गई है। अतः मुझे लिखना पड़ रहा है–

हम जो खाते हैं उससे नहीं;
अपितु हम जो पचाते हैं उससे बलवान् बनते हैं।
हम जो पढ़ते हैं उससे नहीं;
अपितु जो हम याद रखते हैं उससे विद्वान् बनते हैं।
हम जो धन कमाते हैं उससे नहीं,
अपितु जो हम धन बचाते हैं उससे धनवान् बनते हैं।
हम जो बोलते हैं उससे नहीं,
अपितु जो हम आचरण में उतारते हैं उससे ही चरित्रवान् बनते हैं।

–धर्मपाल कपूर

पति-पत्नियों के बीच कलह का अधिकांश कारण होता है गलतफहमी व अविश्वास की भावना। संदेह की स्थिति प्रायः अविश्वास के कारण ही उत्पन्न होती है। स्त्री अपनी मांगें पूरी न होते देख आशंका करने लगती है कि ये अधिक वेतन पाते हैं, मुझसे छुपाते हैं, चुपचाप फिजूलखर्ची करते हैं या फिर किसी नैतिक दुराचार की आशंका कर बैठती है। पुरुष भी इसी प्रकार अनेकों कारणों से स्त्रियों के स्वभाव पर सन्देह करने लग जाता है। अधिकांश झगड़े इसी गलतफ़हमी के कारण ही उत्पन्न हुये होते हैं। जैसे उर्दूशायर ने

लिखा है–

गलतफ़हमियों में ही यूं ही ज़िन्दगी गुजरी ।
कभी हम न समझे कभी वे न समझे ।।

ऐसी अवस्था में पति-पत्नियों के बीच मानसिक तनाव की स्थिति बनी रहती है । स्त्री एक ओर मुंह बनाये बैठी रहती है, पुरुष दूसरी ओर मन मारे बैठा रहता है । काम करते हुए बोझ-सा अनुभव करते हैं । जीवन भार-सा महसूस करते हैं । इसमें कभी-कभी घर के दूसरे सदस्य भी दलाली करने लगते हैं और उनकी भावनाओं में अधिक विद्वेष भरकर अपना स्वार्थ सीधा करने में लगे रहते हैं ।

(6) व्यसन दोष – मुख्य तीन प्रकार के व्यसन होते हैं–जुआ, शराब और परस्त्रीगमन । विशेषतः अमीर और बहुत गरीब घरों में ये व्यसन देखने को मिलते हैं । इनसे धन का नाश होता है और अपनी औलाद पर भी कुप्रभाव पड़ता है, क्योंकि कोई भी पत्नी नहीं चाहती कि उसका पति किसी भी व्यसन का आदी हो । इन व्यसनों के कारण भी गृहस्थों की आर्थिक स्थिति बिगड़ जाती है और समाज में बदनामी भी होती है । घरों में पति व पत्नी में झगड़ा भी रहता है । बहुत सी शादियां शराबखोरी के कारण टूटती हैं । आजकल यह व्यसन औरतों में भी पाया जाता है । वे दिन भर घर में अकेली रहती हैं । समय काटने के लिये थोड़ा-थोड़ा पीना सीख लेती हैं ।

(7) व्यक्तिवाद – हम देखते हें कि दुःखी पति, पत्नी, सास, बहू, पिता, पुत्र, भाई-भाई आदि के झगड़ों का मूलकारण है, निकृष्ट स्वार्थ । इसके कारण आज संयुक्त परिवारों के स्थान पर एकल परिवार बनते जा रहे हैं । आज व्यक्ति स्वार्थ के कारण इतना अंधा हो चुका है कि वह स्वयं अपनी पत्नी और अपने बच्चों को ही अपना परिवार समझता है न कि माता, पिता, भाई, बहन आदि । इस युग में ऐसी आशा करना व्यर्थ है कि सन्तान बड़ी होकर हमारी सेवा करेगी, सहारा बनेगी और सुख देगी । इन दिनों जो हवा चल रही है, उसमें पशु प्रवृत्ति का ही बोलबाला है । पशुओं के बच्चे तभी तक अपने माता-पिता का सहारा लेते हैं जब तक कि वे अपने पैरों पर खड़े नहीं हो जाते । जब वे चलने-फिरने लगते हैं तो फिर माँ-बाप से अपना रिश्ता तोड़ लेते हैं और इस बात की परवाह नहीं करते कि उन्हें जन्म देने वाले

जनक-जननी का क्या हाल है? मनुष्य के बच्चे भी अब उसी रास्ते पर चल रहे हैं। जब तक वे अपने पैरों पर खड़े नहीं होते तभी तक उन्हें माता-पिता की जरूरत अनुभव होती है। विवाह हो जाने पर तो उनकी आँखें ही बदल जाती हैं। इस विषय में मुनि श्री तरुणसागर लिखते हैं–

सोमवार से रविवार तक सात वार होते हैं। लेकिन यह तो सप्ताह के सात वार हुए। मैं एक आठवाँ वार भी बताता हूँ, वह है–परिवार। 30 दिन मिलते हैं तो एक माह बनता है। 12 माह मिलते हैं तो एक साल बनता है। यही मेल-मिलाप परिवार के साथ भी लागू होता है। भाई-बहन, सास-बहू, देवर-देवरानी जहाँ मिलते हैं वह परिवार होता है। आज परिवार का मतलब ''हम दो हमारे दो'' रह गया है, इसमें माँ-बाप नहीं आते। जबकि फैमिली का अर्थ है–

(1) F = Father
(2) A = and
(3) M = Mother
(4) I = I
(5) L = Love
(6) Y = You –कड़वे प्रवचन (भाग-3) पृ. 3

स्वार्थ भी दो प्रकार का होता है, एक शारीरिक स्वार्थ जिसका परित्याग किया जा सकता है और दूसरा मानसिक स्वार्थ जिसके कारण घर में प्रायः कलह क्लेश रहता है। पिता कहता है, सत्संग चलो, पुत्र कहता है मन नहीं करता, मन तो सिनेमा जाने को करता है। वस्तुतः विवाह के बाद व्यक्ति की व्यक्तिगत स्वतंत्रता का अपहरण हो जाता है। इस कारण उससे परिवार के अन्य सदस्यों की रुचियों को ध्यान में रखकर अपना जीवनयापन करना पड़ता है। तभी उसका गृह सुखी बन सकता है।

(8) सहनशीलता का अभाव – गृहस्थ में संगठन व प्रेम बनाये रखने के लिये सहनशीलता परमावश्यक है। घरों में अनेकों झगड़े इस कारण से होते हैं कि आपस में एक दूसरे की बात सहन नहीं की जाती। महाभारत के युद्ध का

एक कारण द्रौपदी का दुर्योधन को निम्नलिखित उपालम्भ था जो कि वह सहन न कर सका। अंधे की औलाद अंधे ही होते हैं। अतः महाभारत का युद्ध हुआ। अतः गृहस्थ में यदि पति अंगारा है तो पत्नी को जलधारा बन जाना चाहिये, तभी वहाँ पर सुख, शांति, आनंद की वृष्टि होगी। कबीर ने सत्य ही लिखा है–

शीलवंत सबसे बड़ा सर्ब रतन की खान।
तीन लोक की सम्पदा रही शील में आन।।

मुनि श्री तरुणसागर लिखते हैं–

पति कभी क्रोध में आग बने तो पत्नी पानी बन जाये और पत्नी कभी अंगार बने, तो पति पानी बन जाये।

–कड़वे प्रवचन (भाग-1) पृ. 82

(9) अति कामवासना – गृहस्थ प्राकृतिक कामवासना को मर्यादा में रखने का सर्वोत्तम साधन है। विवाह का अर्थ यह नहीं है कि अतिभोग से दम्पति अपना नाश कर लें। परन्तु आजकल अधिकतर युवक युवतियाँ वासनाओं पर नियंत्रण के अभाव के कारण अपनी इन्द्रियों पर संयम नहीं रखते हैं। फलतः उन में क्रोध रोग अधिक बढ़ जाता है। परन्तु इसके विपरीत जो पति पत्नी संयम में रहते हैं उनका प्रेम दिनों दिन बढ़ता चला जाता है। आजकल परिवार नियोजन की आड़ में वीर्य नाश करने के कितने ही तरीके निकाल लिये हैं। यदि अति कामवासना के स्थान पर लोग संयम का जीवन व्यतीत करे तो यह समस्या स्वतः ही हल हो जायेगी और गृहस्थ भोगशाला के स्थान पर योगशाला बन जायेगा। इसके विषय में वात्स्यायन ने ''कामसूत्र'' में लिखा है–

किसी भी व्यक्ति के स्वास्थ्य एवं सुख के लिये कामवासना की तुष्टि अत्यंत आवश्यक हैं अतिभोग में बहुत खतरा है और उससे बचना चाहिये।

(10) दहेज का अभिशाप – दहेज विरोधी अधिनियम 1961 (Anti Dowry Act 1961) के अनुसार दहेज लेना व देना गैर-कानूनी घोषित किया जा चुका है। परन्तु फिर भी दहेज प्रथा बढ़ती जाती है। जो व्यक्ति अपनी इच्छा और सामर्थ्य के अनुसार अपनी लड़की को विवाह के समय दहेज देता

है वह तो उचित माना जा सकता है । परन्तु जो व्यक्ति लड़की वालों से दहेज मांगकर लेते हैं और जो लड़की को विवाह के बाद दहेज लाने के लिये कहते हैं वे व्यक्ति अत्यंत लोभी और नीच होते हैं । ऐसे ही लोगों के कारण दहेज अभिशाप बन जाता है । क्योंकि कई माता-पिता के पास दहेज के लिये फालतू धन नहीं होता और उन्हें अधिक ब्याज पर रुपया उधार लेना पड़ता है । जो लड़के वाले दहेज की माँग करते हैं, लड़की वालों को ऐसे व्यक्तियों से भूलकर भी रिश्ता नहीं करना चाहिये । यहाँ तक कि दहेज दानव के कारण कई लड़कियाँ या तो कुंवारी रह जाती हैं या आत्महत्या तक भी कर लेती हैं । यहाँ तक कि भारत में औसतन 1 घंटे में दहेज के कारण एक लड़की को मार दिया जाता है । अतः सरकार को इस कलंक को रोकने के लिए बहुत सख़्त कानून बनाना चाहिये और लोगों को भी अपनी सोच बदलनी चाहिये । जबरदस्ती दहेज लेना बड़ा अभिशाप है । अथर्ववेद में लिखा है–

अश्लीला तनूर्भवति रूशती पाययामुया ।
पतिर्यद् वध्वो वाससः स्वमंगमभ्यूर्णुते ।। 4.1.27

जो पति अपनी वधू के वस्त्रों से अपने अंगों को ढकता है अर्थात् वधू के द्वारा लाये हुए सामान के उपभोग की इच्छा करता है उसका शरीर अश्लील या दूषित हो जाता है । अतः दहेज लेने या उसको चाहने की प्रथा को वेद में पाप बताया गया है ।

(11) तलाक़ – दम्पति के लिये तलाक़ का मार्ग एक भयंकर मार्ग है । इस पर पाँव रखकर कभी शांति नहीं मिल सकती । इसके कारण ही आज विश्व में विशेषतः पश्चिम में गृहस्थ उजड़ गये हैं । उन गृहस्थों में एक पवित्र आत्मीयता का सूत्र जो पति पत्नी में होना चाहिये नहीं रह गया है । वहाँ विवाह एक तुच्छ स्वार्थ की पूर्ति का गठबंधन बनकर रह गया है एवं स्वार्थ को थोड़ा सा भी ठेस लगने पर उसे तोड़ दिया जाता है । यही कारण है कि आज संसार में तलाक़ों की संख्या भूतकाल से काफ़ी बढ़ रही है ।

इससे आज तक कुछ भी सुधार नहीं हुआ है, अपितु परिस्थिति विषम से विषमतर बन गई है । यदि आज तलाक़ की यह कुप्रथा प्रचलित न होती, तो अनेक व्यक्ति पाप से बच जाते और निरीह अबलाओं पर भी इस प्रकार मुसीबत का पहाड़ न टूट पड़ता । संसार का प्रत्येक व्यक्ति अल्पज्ञ एवं अपूर्ण

है । न चाहते हुये भी क्रोध कभी-कभी आ ही जाता है । ऐसे समय पति पत्नी को सहनशीलता से ही काम लेना चाहिये । महात्मा गांधी जैसे सुलझे हुये व्यक्ति ने भी अपनी पत्नी से कितना अनुचित एवं क्रूर व्यवहार किया था । यदि उस समय तलाक़ की प्रथा जोरों पर प्रचलित होती तो ऐसी अवस्था में तलाक़ हो जाता । यदि ऐसा हो जाता तो क्या आदर्श रहता कस्तूरबा बाई और महात्मा गांधी के जीवन का । फिर इसका भी क्या विश्वास है कि इससे तलाक़ के बाद जो अगला चुनाव होगा, उनमें से किसी को क्रोध नहीं आयेगा । प्रायः तलाक़ के समय औलाद की तो अत्यधिक दुर्दशा होती देखी गई है । पति चाहता है कि जो पत्नी उसे छोड़कर जा रही है बच्चे उसके साथ रहें और पत्नी चाहती है कि ये बच्चे पति के साथ ही रहें ताकि भावी पति पर कोई बोझ न पड़े । अतः इस प्रकार माता-पिता के रहते हुए भी बच्चा अनाथ बन जाता है । इस प्रकार यदि बच्चों की संख्या पर्याप्त हो जाये ता बताइये इस अनाथालय को कौन सम्भालेगा । परित्यक्ता सीता की भावना को कालिदास ने इस प्रकार व्यक्त किया है–

साहं तपः सूर्यनिविष्टदृष्टिरूर्ध्वप्रसतेश्चरिर्तुयतिष्ये ।
भयो यथा मे जनमान्तरेऽपि त्वमेव भर्ता न च विप्रयोगः । ।

जब तक मेरा जीवन शेष है मैं भगवान् से यही प्रार्थना किया करूँगी कि भावी जन्म में मैं यदि स्त्री बनूं तो राम ही मेरे पति हों । किन्तु जिस प्रकार इस जन्म में दो बार उनका वियोग हुआ है, यह न हो । कितनी निष्ठा, भक्ति और तन्मयता है ? परन्तु यह दारुण दुर्भाग्य है कि यह भावना आज की सौदेबाजी में कहाँ मिलेगी ।

(12) मानवता का अभाव – आज के गृहस्थ में झगड़े, असंतोष और अशांति का एक कारण मानवता का अभाव भी है । वस्तुतः आज दुःखी गृहस्थों में मानवता कहाँ मिलती है निरुक्त में लिखा है– **मत्वा कर्माणि सीव्यति** मानव वह है जो सोच विचार कर कार्य करे । ऐसे सौभाग्यशाली गृहस्थ बहुत कम ही मिलेंगे, जिनमें पति-पत्नी, दूध-पानी की तरह एक होकर रहे हो, अपना आपा दूसरे में घुला चुके हों, दो मिलकर एक हो चुके हों, जिनमें तनिक भी दुःख, अविश्वास या सन्देह न हो, जिनमें दोनों की आशायें आकांक्षायें मिलकर एक हो गई हों, जिन्होंने जीवन के कर्त्तव्य और उत्तरदायित्वों का भार समान रूप से उसी तरह अपने कंधों पर लाद लिया हो जैसे दो बैल एक जुए

को कंधों पर रखकर वहन करते हैं । एक उर्दू शायर ने लिखा है–

सब लुट गया सरेआम सपन बाकी है ।
अब तो शबनम की जगह तपन बाकी है ।
आज आँखें भी हैरत से परेशां हैं ।
इन्सान लापता है, कफ़न बाकी है । ।

4. गृहस्थ में सुख, शांति और आनन्द के मुख्य साधन

आजकल गृहस्थों में सुख, शांति और आनन्द का अभाव इस कारण है कि इसमें संस्कारों एवं मर्यादाओं का अभाव है । कुछ मुख्य मर्यादाओं का संक्षिप्त में उल्लेख इस प्रकार किया जाता है जिनके पालन से गृहस्थ नरक से स्वर्ग बन सकता है–

(1) अभिवादन एवं आशीर्वाद – प्रत्येक गृहस्थ में यह मर्यादा होनी चाहिये कि प्रातःकाल उठकर रात को सोने से पूर्व छोटे अपने बड़ों को अभिवादन (नमस्कार) करें और बड़े उन्हें आशीर्वाद दे । उनके घर में जो भी आये वे उसका नमस्ते से स्वागत करें अर्थात् अभिवादन सत्कार करें ।

(2) आज्ञापालन – इसका भाव यह है कि गृहस्थ के सदस्य में सहायता एवं सहयोग की भावना हो । वे एक दूसरे सदस्य का आदर सत्कार करें और कहना माने । छोटे अपने बड़ों के आदेशों का पालन करें और बड़े छोटों को उचित आदेश दें । इसके विषय में चीनी बौद्ध विद्वान् ने अंग्रेजी में "My Family Life" नामक पुस्तक लिखी है । इसके केवल तीन वाक्य इस प्रकार हैं–

(1) Family Pleasure is the greatest pleasure.
(2) Life is complete, with wife by your side, and Children at your feet.
(3) Life is hell, with wife at dagers drawn, and Children at your head.

अर्थात्

(1) पारिवारिक आनन्द सर्वोपरि आनन्द है ।
(2) जीवन पूर्ण है, जब पत्नी पहलू में हो

और पुत्र पुत्रियाँ चरणों में हों।

(3) जीवन नरक है, यदि पत्नी झगड़ालू हो
और पुत्र पुत्रियाँ सिर पर चढ़े हों।

ऋग्वेद में सत्य ही लिखा है–

इहैव स्तं मा वि यौष्टं विश्वमायुर्व्यश्नुतम्
क्रीडन्तौ पुत्रै र्नप्तृभिर्मोदमानौ स्वे गृहे। 10.85.42

हे पति और पत्नी! तुम दोनों घर में ही रहो कभी तुम में वियोग अर्थात् अनबन न हो, पूरी आयु को प्राप्त होओ, पुत्रों एवं नाती पोतों के साथ आनन्द करो, अपने घर में शांतिपूर्वक रहो।

प्रस्तुत मंत्र में बताया गया है कि परिवार के लोगों को एक दूसरे के साथ प्रेम में बरतना चाहिये और आपस में आज्ञापालन की भावना भी होनी चाहिये। कभी लड़ाई, झगड़ा, द्वेष नहीं करना चाहिये। ऐसा करने से संतान वृद्धि होगी और परिवार के सारे सदस्यों का जीवन शांतिमय रहने से रोगरहित हो जायेगा और वे सब दीर्घ आयु पाप्त करेंगे। इसके विपरीत जिन परिवारों में लड़ाई रहती है, वहाँ मन सदा चिन्ता में रहता है और आयु क्षीण हो जाती है। परिवार के सदस्य का मन चिड़चिड़ा हो जाता है। बहुत सी स्त्रियाँ पतियों के दुर्व्यवहार के कारण और बहुत से पुरुष अपनी पत्नियों के दुर्व्यवहार के कारण शंकित और चिड़चिड़े हो जाते हैं। परन्तु जो लोग घर में अपनी नाती पोतों के साथ खेलते हैं और आनन्द में रहते हैं वे बड़ी आयु तक जीवित रहते हैं।

(3) सहनशीलता – कठिनता एवं कठोरता को सहन करना, जहाँ सहनशीलता है, वहाँ अपने से बड़ों की ताड़ना को सहन करना आदर्श सहनशीलता हैं अपने माता-पिता, दादा-दादी आदि प्रियजनों की ताड़ना के शिरोधार्य करके उन्हें संतुष्ट, शांत और प्रसंग करना असली सहनशीलता हैं अतः अथर्ववेद में लिखा है–

मधुमन्मे, निक्रमणं मधुमन्मे परायणम्।
वाचा वदामि मधुमद् भूयासं मधुसंदृशः। 1.34.3

पद्यानुवाद –

मीठा हो मेरा मिलन मीठा हो मेरा बिछुड़ना,
वाणी से बालूं मधुर हो जाऊँ मधुसम मधुर ।

स्वामी विद्यानंद ''विदेह''

मेरा निकट पहुँचना, मिलना, मधुयुक्त हो । मेरा परे जाना, बिछुड़ना, मधुयुक्त हो । मैं वाणी से मधुयुक्त बोलूं । मैं सर्वस्व मधुर दर्शन, मधुर दृष्टि मधु के समान मधुर हो जाऊँ । आचार्य श्रीराम शर्मा अपनी पुस्तक ''गृहस्थ : एक तपोवन'' में लिखते हैं–

गृहस्थाश्रम संयम की पाठशाला है । गृहस्थाश्रम तपस्या है । हम अपनी सैकड़ों वृत्तियों का निरोध करने की शिक्षा गृहस्थाश्रम में प्राप्त करते ही हैं ।

(4) अनुशासन – इसका अर्थ है नियमानुसार कार्य करना । घर के नियमों का पालन करना घर के प्रत्येक सदस्य का कर्त्तव्य है जैसे किस काम को किस समय करना, किस काम को किस प्रकार करना, किस स्थान पर किस काम को करना आदि । नियमानुसार काम करने का सुदृढ़ अभ्यास घर के प्रत्येक सदस्य को कराया जाना चाहिये । दफ्तर में दफ्तर के नियमों के अनुसार काम करें । एड़गर हूवर ने लिखा है–

हर घर में अगर अनुशासन का पालन किया जाये तो युवाओं द्वारा किये जाने वाले अपराधों में 95 प्रतिशत तक की कमी आ जायेगी ।

(5) श्रम – घर के सारे सदस्यों को मेहनती होना चाहिये । अपने-अपने काम को पूरी सावधानी व पूरी मेहनत से करना चाहिये । हरेक काम के लिये एक निश्चित् समय और हरेक समय के लिये एक निश्चित काम होना चाहिये । प्रातःकाल उठना, स्वाध्याय करना, सैर करना और सोना सब काम समय पर होना चाहिये ।

(6) सेवा – घर के सारे सदस्य एक दूसरे की सहायता और सेवा करें । यह एक गलत धारणा है कि गृहस्थ में रहकर राष्ट्र की सेवा करना असम्भव है । अपितु राष्ट्र की सच्ची सेवा गृहस्थ की कर सकते हैं । राष्ट्र की सबसे बड़ी सेवा है अपनी संतान को सुसंतान बनाना । आप की आज की संतान ही

कल के नागरिक हैं। बड़े होने पर ये ही राष्ट्र के कर्णधार होंगे। यदि आप अपनी संतान को प्रत्येक दृष्टि से अच्छे नागरिक बनाते हैं तो आप न केवल अपने प्रिय राष्ट्र की अपितु समस्त संसार की सेवा करते हैं।

शिक्षा का स्थान स्कूल व कॉलिज हो सकते हैं, परन्तु दीक्षा का स्थान घर ही है। अध्यापक, अंग्रेज़ी, हिन्दी, गणित आदि को तो पढ़ा सकता है। गुण, कर्म, स्वभाव की उत्तम शिक्षा देने का उत्तरदायित्व माता-पिता आदि पर ही होता है। जिन माता-पिता ने जाने अनजाने में बुरी आदतें सिखाकर अपने बच्चों को एक दुष्ट नागरिक के रूप में राष्ट्र के समक्ष उपस्थित किया है, वस्तुतः उन्होंने समाज की बड़ी कुसेवा की है।

(7) प्रेम – प्रेम वहाँ से आरम्भ होता है जहाँ दो हृदय मिलते हैं और वहाँ समाप्त होता है जहाँ दो शरीर मिलते हैं। घर के प्रत्येक सदस्य में प्रेमभावना का होना परमावश्यक है। राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न अलग-अलग अपने महलों में रहते हुये भी प्रेम भावना से ओत-प्रोत थे। वस्तुतः प्रेम पति-पत्नी को मृत्युपर्यन्त ऐसे बांधे रहता है जैसे चुम्बक लोहे को बांधे रखता है। इसकी मूल नीति त्याग है। त्याग के अभाव से प्रेम का प्रादुर्भाव कभी भी नहीं हो सकता है। दम्पत्ति आपस में त्याग करे, पिता पुत्र के लिये, भाई भाई के लिये त्याग करें। क्या त्याग करे? केवल एक ही वस्तु का वह है—स्व सुख इच्छा का त्याग। वस्तुतः प्रेम तब ही होता है जब उस प्रेम के पीछे स्वसुख इच्छा न हो।

मैं आपकी सेवा में प्रेम के विषय में एक शिक्षाप्रद कहानी प्रस्तुत करना चाहता हूँ। एक सेठ जी की चार बहुएं थीं। एक दिन लक्ष्मी ने सेठ से आकर कहा, अब मैं आपके घर से जाना चाहती हूँ आप केवल एक वर मांग लो। सेठ जी ने अपनी बहुओं की राय पूछी। पहली बहू ने कहा कि जमीन मांग लो, दूसरी ने कहा सोना मांग लो, तीसरी ने कहा स्कूल मांग लो परन्तु चौथी बहू बहुत समझदार थी उसने कहा प्रेम मांग लो। सेठ जी ने लक्ष्मी से प्रेम मांग लिया। लक्ष्मी ने कहा कि अब मैं तेरे घर को छोड़कर नहीं जाऊंगी। क्योंकि जहाँ प्रेम है वहीं लक्ष्मी रहती है जैसे यदि घर में प्रेम होता है तो उस घर का

80 वर्षीय वृद्ध भी जीना चाहता है । परन्तु इसके विपरीत जिस घर में प्रेम नहीं होता उस घर में 20 वर्षीय जवान भी आत्महत्या करना चाहता है । हम देखते हैं कि आज अधिकतर घरों में प्रेम नहीं है और वहाँ पर स्वार्थ कलह लड़ाई झगड़े हैं । इसीलिये उर्दू शायर जाफ़र ज़टल्ली ने लिखा है–

न यारों में रही यारी न भय्यो में वफादारी
मुहब्बत उठ गई सारी अज़ब यह दौर आया है ।

इसी प्रकार एक उर्दूशायर ने फरमाया है–

न मुहब्बत न मुरब्बत (शिष्टाचार) ।
मैं शर्मिंदा हूँ आदमी होकर । ।

जब कभी प्रेम में एक बार विकार आ जाये तो वह कभी जुड़ता नहीं है । रहीम ने सत्य ही लिखा है–

रहिमन धागा प्रेम का, मत तोड़ो चटकाय ।
टूटे से फिर ना जुड़े, जुड़े गांठ पड़ जाये । ।

अभिमान और शारीरिक सुख ही स्वार्थ है, हृदय की प्रेम तरंग में सब शिकायतें व शिकवे बह जाते हैं । किसी उर्दू शायर ने ठीक ही लिखा है–

उल्फ़त में बराबर हैं, जफ़ा हो कि वफ़ा हो ।
हर चीज में लज्जत है, अगर दिल में मज़ा हो । ।

चकवा चकवी की भाँति प्रेम करने वाले दम्पति हो । अथर्ववेद में लिखा है–

इहेमांविन्द्र सं नुद चक्रवाकेव दम्पती ।
प्रजयैनो स्वस्तकौ विश्वमायुर्व्यश्नुताम् । । 14.2.64

हे शक्तिशाली प्रभु ! इस दम्पत्ति का चकवा चकवी की भाँति प्रेम के पूरे रंग में रंग, संततिसहित यह दम्पत्ति घरों में रहें एवं पूर्ण आयु भोगे ।

इसके विषय में इंग्लैंड की महारानी विक्टोरिया के जीवन की एक घटना इस प्रकार प्रस्तुत की जाती है कि महारानी विक्टोरिया ने अपने पति को कुछ ऐसे शब्द कह दिये जिससे महारानी होने का अभिमान झलकता था । उसके पति प्रिन्स एलबर्ट इसे सहन न कर सके और अपने कमरे में जाकर

द्वार बंद कर लिया । कुछ ही समय के पश्चात् महारानी विक्टोरिया ने उस कमरे का द्वार खटखटाया ।

प्रिन्स एलबर्ट ने पूछा–''द्वार पर कौन है ? इस पर महारानी विक्टोरिया ने उत्तर दिया–''मैं हूँ इंग्लैण्ड की महारानी विक्टोरिया, द्वार शीघ्र खोलो ।''

परन्तु द्वार नहीं खुला । महारानी विक्टोरिया कुछ समय तक विचार करती रही और उसे मालूम हो गया कि उससे पति रूठ गये हैं । कुछ समय के बाद महारानी विक्टोरिया ने फिर द्वार खटखटाया–

प्रिन्स एलबर्ट ने पूछा–कौन है ?

विक्टोरिया ने उत्तर दिया–मैं हूँ आपकी प्यारी पत्नी । द्वार खुल गया और पति का सारा गुस्सा भाग गया ।

एक दिन एक महिला अपने घर के बाहर आई और उसने 3 संतों को अपने घर के सामने देखा । वह उन्हें जानती न थी । महिला ने कहा–कृपया भीतर आइये और भोजन करिए ।

संत बोले–''क्या तुम्हारे पति घर पर हैं ?''

महिला ने कहा – नहीं ।

संत बोले – ''हम तभी भीतर आएंगे जब वह घर पर हों ।''

शाम को उस महिला का पति घर आया और महिला ने उसे यह सब बताया ।

महिला के पति ने कहा–''जाओ और उनसे कहो कि मैं घर आ गया हूँ और उनको आदर सहित बुलाओ ।''

महिला बाहर गई और उनको भीतर आने के लिए कहा ।

संत बोले–''हम सब किसी भी घर में एक साथ नहीं जाते ।''

''पर क्यों ?'' – महिला ने पूछा ।

उनमें से एक संत ने कहा–''मेरा नाम धन है' । फिर दूसरे संतों की ओर इशारा करके कहा–''इन दोनों के नाम सफलता और प्रेम हैं । हममें से कोई एक ही भीतर आ सकता है । आप घर के अन्य सदस्यों से मिल कर तय कर लें कि भीतर किसे निमंत्रित करना है ।''

महिला ने भीतर जाकर अपने पति को यह सब वृत्तान्त सुनाया। उसका पति बहुत प्रसन्न हो गया और बोला– यदि ऐसा है तो हमें धन को आमंत्रित करना चाहिए। हमारा घर खुशियों से भर जायेगा। लेकिन उसकी पत्नी ने कहा–''मुझे लगता है कि हमें सफलता को आमंत्रित करना चाहिए।'' उनकी बेटी दूसरे कमरे से यह सब सुन रही थी। वह उनके पास आई और बोली–मुझे लगता है कि हमें प्रेम को आमंत्रित करना चाहिए। प्रेम से बढ़कर कुछ भी नहीं है। ''तुम ठीक कहती हो, हमें प्रेम को ही बुलाना चाहिए'' – उसके माता-पिता ने कहा।

महिला घर के बाहर गई और उसने संतों से पूछा–''आपमें से जिनका नाम प्रेम है वे कृपया घर में प्रवेश कर भोजन ग्रहण करें।'' प्रेम घर की ओर बढ़ चले। शेष दोनों संत भी उनके पीछे चलने लगे। महिला ने आश्चर्य से उन दोनों से पूछा–''मैंने तो केवल प्रेम को आमंत्रित किया था। आप लोग भीतर क्यों आ रहे हैं?''

उनमें से एक ने कहा–''यदि आपने धन और सफलता में से किसी एक को आमंत्रित किया होता तो केवल वही भीतर जाता। आपने प्रेम को आमंत्रित किया है। प्रेम कभी अकेला नहीं जाता। प्रेम जहाँ-जहाँ जाता है, धन और सफलता उसके पीछे जाते हैं।''

स्वेट मार्डन ने दाम्पत्य जीवन में प्रेम को धन से भी अधिक महत्त्वपूर्ण बताते हुए लिखा है–

यदि हम चाहें तो इस संसार में थोड़े से धन से भी निर्वाह कर सकते हैं, परन्तु प्रेम एक ऐसी समस्या है, जिसकी हमारे यहाँ बहुलता होनी चाहिये और जिसे हम कभी भी इतनी मात्रा में इकट्ठा नहीं कर सकते कि हम यह कह सकें कि अब तो प्रेम आवश्यकता से अधिक हो गया।

मुनि श्री तरुणसागर लिखते हैं–

जिस घर में और सब कुछ हो मगर प्रेम न हो वह घर, घर नहीं, श्मशान है। श्मशान में भी बहुत मुर्दे होते हैं मगर वे आपस में न तो कभी मिलते हैं और न ही कभी बतियाते हैं। जिस घर में पति-पत्नी, सास-बहू और बाप-बेटे साथ

रहते हों मगर एक-दूसरे को देखकर मुस्कराते न हों तो क्या वह घर भी श्मशान नहीं है? परिवार में प्रेम और समर्पण है तो जीवन स्वर्ग है। मैं पूछता हूँ, प्रेम से बड़ा क्या दुनियाँ में कोई स्वर्ग है? घृणा और नफ़रत से भी बड़ा क्या दुनियाँ में कोई नरक है? —कड़वे प्रवचन भाग-1 पृ. 59

सुख-सन्तोष का जीवन फूंस की झोंपड़ी में भी जिया जा सकता है, बशर्ते कि लोगों के अन्तःकरण पारस्परिक प्रेम-भावनाओं को स्थिर रख सके। स्वेट मार्डन ने दाम्पत्य जीवन में प्रेम को धन से भी अधिक महत्त्वपूर्ण और मूल्यवान मानते हुए लिखा है कि यदि हम चाहे तो इस संसार में थोड़े-से धन से भी निर्वाह कर सकते हैं परन्तु प्रेम एक ऐसी समस्या है, जिसकी हमारे यहाँ बहुलता होनी चाहिये और जिसे हम कभी भी इतनी मात्रा में इकट्ठा नहीं कर सकते कि हम यह कह सके कि अब तो प्रेम आवश्यकता से अधिक हो गया। जब थियोडोर पार्कर का विवाह हुआ तो उसने पत्नी के प्रति अपने व्यवहार को सदाशयता और मैत्रीपूर्ण रखने के लिए एक आचार संहिता बनाई। उसने विवाह के दिन ही अपनी डायरी में निम्नलिखित दस निश्चय लिख दिये और संकल्प किया कि वे दोनों कड़ाई के साथ इनका पालन करेंगे।

वे दस निश्चय इस प्रकार हैं— (1) आवश्यक कारण न हो तो पत्नी की इच्छा का कभी विरोध न करना, (2) उसके प्रति सभी कर्त्तव्यों का उदारता से पालन करना, (3) कभी कटु व्यवहार न करना, (4) उसके स्वाभिमान को किसी भी प्रकार ठेस न पहुँचाना, (5) उसे कभी आदेश देकर परेशान न करना, (6) उसकी शारीरिक निर्मलता को प्रोत्साहन देना, (7) उसके काम-काज में हाथ बँटाना, (8) उसके छोटे-मोटे दोषों को नजरअंदाज करना, (9) उसके प्रति अपने उत्तरदायित्वों और कर्त्तव्यों का पालन करना तथा (10) उसके लिए भी परमात्मा से प्रार्थना करना।

डॉक्टर बेवर कहते हैं—

स्त्री पुरुषों का उदासीनता या उपेक्षापूर्वक जीवन बिताना सब दृष्टिकोणों से हानिकर है, उससे तो यही अच्छा है कि वे विवाह ही न करें। स्त्री-पुरुष आपस में अधिकाधिक प्रेम बढ़ाकर केवल अपने शरीरों की उन्नति ही नहीं करते और जीवन को सुखमय ही नहीं बनाते अपितु उत्तम सन्तान भी उत्पन्न

करते हैं। मैंने 300 से अधिक परिवारों की गुप्त जाँच की है और इस परिणाम पर पहुँचा हूँ कि प्रेमी दम्पत्तियों ने ही उत्तम शरीर और बुद्धि वाली सन्तानें उत्पन्न की हैं। 40 परिवार मेरी जाँच में ऐसे आये, जिनमें स्त्री-पुरुषों में अनबन रहा करती थी। इनके तीन-चौथाई बच्चे बड़े बेढंगे, बेहूदे, अंग-भंग, दुर्बल और मूर्ख थे। जो बच्चे अच्छे थे, वे भी प्रेम दम्पत्तियों की सन्तान की अपेक्षा कहीं नीचे दर्जे के थे।

(8) प्रसन्नता – हम देखते हैं कि सूर्य की रश्मियाँ कमल का हृदय गुदगुदा देती हैं। चाँद को देखकर चकोर अपनी सुधबुध भूल जाता है। पूर्णमासी का चाँद सागर की छाती खोल देता है। काली घटायें देखकर मोर नाच उठता है। आम बोरों की वायु कोयल का कंठ खोल डालती है। तब ओ मानव! तू ही उदास क्यों बैठा है? परमेश्वर की अद्भुत महिमा देख! क्षण भंगुर बातों में फंसकर चिन्तित न हो। हँस जोर से हँस! खिलखिलाकर हँस! ऐसा करने से तेरा गृहस्थ सुखी होगा। उर्दू शायर दाग़ देहलवी लिखते हैं–

या तो दीवाना हँसे या तू जिसे तौफ़ीक़ (शक्ति) दे।
वरना दुनियाँ में आकर मुस्करा सकता है कौन?

ऋग्वेद में भी लिखा है–

ओ३म् विश्वदानीं सुमनसः स्याम। 6.52.5

हम सदा आनन्दित और प्रसन्न रहें।

मेरे भाई! पत्नी एवं बच्चों पर प्यार का जादू चलाओ, न कि क्रोध का। कुछ देवियाँ भी ऐसी देखी गई कि दिन भर तो प्रसन्न रहेंगी और जब पति देव के आने का समय होगा तो रूठी रानी बन जायेगी। पति दिनभर काम करके और थककर घर पहुँचता है और घर में जब वह अपनी पत्नी को रूठी रानी देखता है तो उसके मन पर एक चोट सी लगती है। अथर्ववेद में लिखा है–

अहं विष्यामि मयि रूपमस्या वेददित् पश्यन्मनसः कुलायम्। 14.1.57

मैं इसके रूप को अपने अंदर खोलता हूँ, जिसको मैंने अपने मन का घोंसला देखते हुए प्राप्त किया है।

जो पक्षी दिन भर थककर घोंसले में आये और उसे वहाँ घोंसला ही न

मिले तो पक्षी की अवस्था क्या होगी? ऐसे ही जिस पति को घर पहुँचते ही प्रसन्नता न मिले उसकी गति क्या होगी? अनेक पति अपनी पत्नी के कुस्वभाव के कारण अधिक देर तक समय बाहर ही व्यतीत करना ठीक समझते हैं। यदि दिन में कोई प्रतिकूल बात हो भी गई तो मिलन समय पत्नी के मुख पर मुस्कराहट होनी चाहिये। आचार्य श्रीराम शर्मा अपनी पुस्तक ''गृहस्थ : एक तपोवन'' में लिखते हैं–

धन और शिक्षा से दाम्पत्य जीवन को सुविधा सम्पन्न बनाया जा सकता है पर आनन्दमय नहीं। आनन्दमय दाम्पत्य जीवन के लिये उन गुणों की आवश्यकता है, जो पति पत्नी के दो शरीरों में बसने वाली दो आत्माओं को एक सूत्र में आबद्ध कर दे। वे गुण हैं प्रेम, आत्मीयता, स्नेह, त्याग और परिमार्जित भावनाएं तथा परिमार्जित दृष्टिकोण।

(9) शिष्टाचार – आजकल गृहस्थों में शिष्टाचार का अत्यंत अभाव है। सुशिक्षित युवक युवती अपने माता-पिता के प्रति शिष्ट व्यवहार नहीं करते हैं। यह कोई अच्छी बात नहीं है। कमरे में यदि कोई पूर्वज आये तो छोटों को खड़ा होकर अभिवादन करना चाहिये। बड़े व्यक्ति को अपने से बेहतर आसन पर बैठाकर फिर स्वयं बैठना चाहिये। जब वे कमरे से जाने लगे तो पुनः अभिवादन सहित विदा करना चाहिये।

(10) आदर – सब व्यक्तियों को प्रिय होता है और अनादर किसी भी व्यक्ति को प्रिय नहीं होता है। छोटे-छोटे बच्चों में और प्रत्येक व्यक्ति में आदर प्रियता की भावना होती है। पति अपनी पत्नी का आदर करे। पत्नी अपने पति का आदर करे। छोटे बड़ों का और बड़े छोटों का आदर सत्कार करें। किसी को भी किसी का अनादर नहीं करना चाहिये। मुनिश्री तरुणसागर लिखते हैं–

अगर आप सास हैं और अपने परिवार में सुख शांति चाहती हैं तो मेरी चार बातें ध्यान में रखिए। पहली बात, बहू और बेटी में फर्क मत डालिए। बहू को ही बेटी मानिए। दूसरी बात, कभी बहू से झगड़ा हो जाए तो बहू के पीहर वालों को भला बुरा मत कहिए। इसे बहू बर्दाश्त नहीं करेगी। तीसरी बात,

मंदिर में बैठकर बहु की बुराई मत कीजिए । इससे सुलह के सारे दरवाजे बंद हो जायेंगे । चौथी बात, हमेशा ध्यान रखिये कि एक बहू की क्या चाहत होती है, क्योंकि सास भी कभी बहू थी ।

कड़वे प्रवचन भाग-1 पृ. 127

ऊपरलिखित आदेशों का पालन करने से प्रत्येक गृहस्थ का घर सुखमय, शांतमय और आनन्दमय बन जायेगा ।

(11) मितव्ययिता – हिन्दी भाषा की एक कहावत प्रसिद्ध है– जितनी चादर देखो, उतने पाँव पसारो । गृहस्थ एक जिम्मेदारी का आश्रम है, इस कारण प्रत्येक गृहणी का यह कर्त्तव्य है कि जो भी धन घर में आये उसके अंदर अपना गुजारा करे और संकट काल के लिए धन बचावें ताकि संकट काल में किसी के आगे हाथ न पसारने पड़े । पत्नी को चाहिये कि अपने घर का खर्च मर्यादा में करे । गृहस्थ को न अत्यंत उदार होना चाहिये न अत्यंत कृपण । भोजन, वस्त्र और रहन सहन में अपनी आय का ध्यान परिवार का प्रत्येक सदस्य रखे । आजकल वस्त्रों एवं रहन-सहन पर फिजूल खर्च किया जाता है । वस्त्र शरीर को ढांपने के लिये पहना जाता है न कि शरीर प्रदर्शनी के लिये । इसलिये फिजूलखर्च से बचना चाहिये ।

दिन भर परिश्रम करने के बाद भूख लगती है और दाल रोटी भी अत्यधिक स्वाद लगती है परन्तु अत्यधिक धनी व्यक्ति जो कोई शारीरिक काम नहीं करते उनको 56 प्रकार के भोजन भी अच्छे नहीं लगते हैं । इस कारण यदि भोजन अधिक स्वाद बनाना है तो अधिक पैसा खर्च करने से कभी भी नहीं होगा, अपितु शरीर को थकाने से होगा ।

आज मानव ने अपनी आवश्यकताएँ अत्यधिक बढ़ा ली हैं । आपकी जितनी कम आवश्यकताएँ होंगी आप उतना ही सुखी होंगे । ईमानदारी से चाहे जितना भी धन कमाओ ऐसा करने के लिये कोई भी मनाही नहीं है परन्तु इस का उचित प्रयोग करो न कि गलत । गृहस्थ में तो धन की अत्यधिक आवश्यकता पड़ती हैं इसका सदुपयोग करना चाहिये । जो पैसा बचाया वह पैसा कमाया हुआ समझना चाहिये ।

(12) आध्यात्मिक वातावरण – आज के भौतिकवाद में कुछ ऐसे विकास के कार्य किये जाते हैं जैसे शरीर को कैसे सजाया जाये, मन को कैसे लुभाया जाये, जिह्वा की कैसे तृप्ति की जाये। आज का गृहस्थ घर में सुखसुविधा के साधन ही एकत्रित कर रहा है। जितने ये साधन एकत्रित कर रहा है, उतना ही संतोष एवं शान्ति घट रही है, क्योंकि ये भौतिक साधन किसी भी व्यक्ति को सुखसुविधा तो प्रदान कर सकते हैं, परन्तु संतोष, शांति और आनन्द नहीं। आज के गृहस्थों में सुख, शांति और आनन्द का साम्राज्य स्थापित करने के लिये भौतिक वातावरण और आध्यात्मिक वातावरण का सुन्दर समन्वय स्थापित करना होगा। जिन गृहस्थों में प्रभु विश्वास, भक्ति एवं श्रद्धा की भावना का बीज बोया जाता है वहाँ पर आध्यात्मिकता के सुन्दर फूल खिल जाते हैं। प्रेम, सुख, संतोष, शांति और आनन्द की सुगंधित वायु बहती है। स्वामी विवेकानंद ने इसके विषय में कितना सुंदर लिखा है–

Spirituality does not exist in books or in theories or in philosophies. It is not in learning or reasoning but in actual inner growth.

आध्यात्मिकता पुस्तकों, सिद्धान्तों, दर्शनों आदि में नहीं पाई जाती। यह ज्ञान और तर्क में भी नहीं परन्तु मानव की वास्तविक आत्मिक उन्नति में निहित है। प्रत्येक व्यक्ति के लिये आध्यात्मिक उन्नति के ये मुख्य साधन हैं– (1) स्वाध्याय, (2) सत्संग, (3) संतोष, (4) संयम, (5) सेवा, (6) योग, (7) आत्मनिरीक्षण, (8) प्रायश्चित। आचार्य श्रीराम शर्मा अपनी पुस्तक ''गृहस्थ : एक तपोवन'' में लिखते हैं–

पाठको! अपना दृष्टिकोण पवित्र बनाओ। विश्वास रखो। राजा जनक की भाँति आप भी गृहस्थ में रहते हुये सच्चे महात्मा बन सकते हैं।

रामकृष्ण परमहंस जी से एक सब जज ने प्रश्न किया था–''क्या गृहस्थ में रहकर व्यक्ति ईश्वर का साक्षात्कार कर सकता है?

अवश्य गृहस्थ में तत्त्वज्ञान हो सकता है और वह प्रभुदर्शन भी कर सकता है। जब परमात्मा का नाम लेने एवं सुनने मात्र से रोमांच हो जाये और आँखों में

से सच्चे प्रेम के आँसू बहने लगें तो समझना चाहिये कि कंचन व कामिनी की आसक्ति नहीं रही और परमात्मा का अनुभव हो रहा है। दियासिलाई सूखी होती है तो थोड़ी सी ही रगड़ से जल जाती है, गीली हो तो कितनी ही रगड़ो वह नहीं जलेगी। परिवार में आध्यात्मिक वातावरण बनाये रखने के लिये केवल प्रार्थना, उपासना ही पर्याप्त नहीं इसके साथ सारे परिवार को आत्म निरीक्षण भी करना चाहिये।

निष्कर्षतः यही कहना सर्वथा उचित होगा कि गृहस्थ एक विशाल वट वृक्ष के समान है और शेष आश्रम-ब्रह्मचर्य, वानप्रस्थ, संन्यास इसकी शाखाएं हैं। अतः धन्योगृहस्थाश्रम कहकर हमारे पूर्वजों ने चारों आश्रमों में गृहस्थाश्रम ही को धन्य कहा है। जिस प्रकार सारे प्राणी माता का आश्रय पाकर जीवित रहते हैं। उसी प्रकार सारे आश्रम गृहस्थाश्रम पर आधारित हैं। वस्तुतः किसी भी राष्ट्र के विकास के लिये परिवार समाज का स्वस्थ, समर्थ एवं सशक्त होना आवश्यक है। क्योंकि यह जीवन के व्यावहारिक शिक्षण की प्रयोगशाला है।

5. पति एवं पत्नी की प्रतिज्ञायें

दाम्पत्य जीवन को सुखी बनाने के लिए पति व पत्नी निम्नलिखित प्रतिज्ञायें करें–

(1) कटु वचन अथवा गाली आदि का प्रयोग न करना।

(2) कोई दोष या भूल हो तो उसे एकान्त में ही बताना, समझाना। बाहर के लोगों के सामने उसकी तनिक भी चर्चा न करना।

(3) युवा स्त्रियों के साथ अकेले में बातें न करना।

(4) पत्नी पर सन्तानोत्पादन का कम से कम भार लादना।

(5) बच्चों को पढ़ाने के लिए कुछ नियमित व्यवस्था बनाना।

(6) खर्च का बजट पत्नी की सलाह से बनाना और पैसे पर उसी का प्रभुत्व रखना।

(7) गृह व्यवस्था में पत्नी का हाथ बँटाना ।

(8) उसके सद्‌गुणों की समय-समय पर प्रशंसा करना ।

(9) बच्चों की देखभाल, साज-संभाल तथा शिक्षा-दीक्षा पर समुचित ध्यान देकर पत्नी का काम सरल करना ।

(10) पत्नी की आवश्यकताओं तथा सुविधाओं पर समुचित ध्यान देना आदि ।

पत्नी द्वारा भी इस प्रकार की प्रतिज्ञायें की जा सकती हैं–

(1) छोटी-छोटी बातों पर कुढ़ने, झल्लाने या रूठने की आदत छोड़ना ।

(2) बच्चों से कटु शब्द कहना, गाली देना या मारना-पीटना बंद करना ।

(3) सास, ननद, जेठानी आदि बड़ों को अपशब्दों में उत्तर न देना ।

(4) हँसने-मुस्कराते रहने और सहन कर लेने की आदत डालना ।

(5) साबुन, सूई, बुहारी इन तीनों को दूर न जाने देना, सफाई और मरम्मत की ओर पूरा ध्यान रखना ।

(6) उच्छृंखल फैशन बनाने में पैसा या समय तनिक भी खर्च न करना ।

(7) पति से छिपा कर कोई काम न करना ।

(8) अपनी शिक्षा योग्यता बढ़ाने के लिये नित्य कुछ समय निकालना ।

(9) पति को समाज सेवा एवं लोकहित के कार्यों में भाग लेने से रोकना नहीं अपितु प्रोत्साहित करना ।

(10) घर का धार्मिक वातावरण बनाये रखना आदि ।

6. पारिवारिक सुख शांति का मार्ग

मनु महाराज ने सुखमय दाम्पत्य-जीवन के सम्बन्ध में लिखा है –कि जिस परिवार में स्त्री और पुरुष सन्तुष्ट रहते हैं, वहाँ नित्य कल्याण होता रहता है। जहाँ स्त्रियों की पूजा होती है, वहाँ देवताओं का वास होता है और जहाँ उनका सत्कार नहीं होता, वहाँ की प्रत्येक क्रिया निष्फल हो जाती है। जिस कुल की स्त्रियों में शोक होता है वह कुल नष्ट हो जाता है और जहाँ स्त्रियाँ प्रसन्न रहती हैं उस कुल की वृद्धि होती है। सुखमय दाम्पत्य जीवन के लिए पति-पत्नी का प्रसन्न रहना आवश्यक है। जब तक दोनों व्यक्ति सन्तुष्ट नहीं रहेंगे तब तक सुख नहीं प्राप्त हो सकता।

किस प्रकार यह प्रसन्नता प्राप्त हो, यह प्रश्न टेढ़ा है और इसका उत्तर बहुत विशाल है। पति-पत्नी की प्रसन्नता की कोई परिभाषा नहीं बनाई जा सकती। कोई पति किसी बात पर प्रसन्न होता है तो कोई उसी बात पर नाराज हो सकता है। संसार के प्रत्येक व्यक्ति का स्वभाव एवं रुचि भिन्न होती है। ऐसी स्थिति में तब एक सर्वमान्य उत्तर होना चाहिये, जो सब पर लागू हो सके। विचार किया जाये तो पारिवारिक प्रसन्नता निम्नलिखित बातों पर आधारित रहती है।

(1) **स्वास्थ्य और सौन्दर्य** – स्त्री स्वास्थ्य पर विचार करते समय इस बात का ध्यान रखना आवश्यक होगा कि स्त्रियों का आजकल स्वास्थ्य अधिक गिरा हुआ है। जब स्वास्थ्य ठीक नहीं रहेगा, तो सौन्दर्य नहीं रह सकता। वस्तुतः स्वास्थ्य का नाम ही सौन्दर्य है। जो हँसमुख होगी, वही सुन्दर लगेगी। सुन्दरी स्त्री पति के हृदय की स्वामिनी होगी और जब स्त्री पति हृदय को अपने वश में रखेगी तो उसकी जीवन सर्वदा सुखी रहेगा। रोगी स्त्री या चिड़चिड़ी स्त्री को पति का प्रेम कभी प्राप्त हो ही नहीं सकता और जब तक स्त्री को पति का प्रेम न प्राप्त हो वह सुन्दर नहीं रह सकती।

कल्पना कीजिए, आप दिन भर के श्रम से थककर विश्राम के लिए

संध्या समय पर घर लौटे और देखा पत्नी खाट पर लेटी है, चूल्हे में आग नहीं जली है। कभी सिर की पीड़ा है, कभी ज्वर आ रहा है। आप सोच रहे हैं घर चलकर आराम करें और यहाँ आकर डॉक्टर के घर जाना पड़ता है। कभी आप स्वयं को कोसते हैं कभी पत्नी को, लेकिन हार मानकर दवा लेने जाना ही पड़ता है। कभी सुख सन्तोष नहीं। दिन भर ऑफिस के काम से थके-मांदा घर आये पर यहाँ भी शान्ति नहीं मिली। आप इस पर खीज तो उठते हैं लेकिन कभी आपने सोचा ऐसा हुआ क्यों? आइए, हम आप विचार करें कि पत्नी के बीमार होने का क्या कारण है?

खान-पान में असावधानी, बेकारी, चिन्ता अथवा भोगविलास की अधिकता से तो वह बीमार नहीं हो गई। अवश्य, तो इन्हीं कारणों में से कोई कारण होगा या तो पत्नी की गलती होगी या फिर आपकी।

(2) खान-पान में असावधानी – स्त्रियाँ प्रायः भोजन में बड़ी असावधानी करती हैं। जो मिला खा लिया, पेट भरने से काम रहता है। आपको यह देखना है कि क्या खाती है और कब खाती है? यह नहीं कि रूखा-सूखा जो मिल गया खा लिया। जब मन में आया खा लिया। दोपहर का खाना तीन बजे और शाम का भोजन रात के 10 बजे। यह सब असावधानी है। भोजन नित्य नियत समय पर करना चाहिये।

अनेक स्त्रियाँ बासी खाने की शौकीन होती हैं। ऐसा भोजन बहुत हानिकारक होता हैं कुछ लालची होकर भी बासी खाती हैं। रात का भोजन बच गया, घर में और कोई नहीं खा सकता, पति और बच्चों को ताजा खिलाकर स्वयं बासी खाकर रह जाना अच्छा नहीं होता। चाहिए तो यह कि भोजन इस परिणाम से बनाया जाये कि बासी बचे ही नहीं।

बहुतेरी स्त्रियाँ खटाई, मिर्च और अचार बहुत खाती हैं। इससे स्वास्थ्य की हानि होती है, पेट खराब हो जाता है, आँखों की रोशनी धूमिल हो जाती हैं मासिक धर्म सम्बन्धी अनेक शिकायतें उपस्थित हो जाती हैं। स्वाद के लिए जो भोजन किया जाता है, वह तो पहले अच्छा लगता है, परन्तु बराबर

मसालेदार और चट्पटा भोजन करने से पाचनशक्ति खराब हो जाती हैं भोजन सादा होना चाहिये ।

(3) बेकारी – इन्हीं सब बातों पर ध्यान न देने से स्त्रियाँ रोगी बनी रहती हैं । कभी-कभी ऐसा भी होता है कि बेकार रहने से भी स्त्रियाँ रोगी हो जाती हैं । आलस्य में पड़े रहने से भी शरीर रोगी हो जाता है । व्यायाम करते रहने से शरीर के प्रत्येक अंग गठित रहते हैं, शरीर में फुर्ती रहती है । स्त्रियों का सबसे अच्छा व्यायाम चक्की चलाना है, लेकिन आजकल इसका रिवाज केवल देहातों तक ही सीमित है । आजकल तो देहातों में भी आटा पीसने की चक्की मिल खुल गई हैं मिल का चावल और चक्की का आटा खाते-खाते हम निर्बल होते जा रहे हैं ।

आजकल की स्त्रियाँ चक्की चलाना, बर्तन मलना, झाड़ू देना आदि बुरा समझती हैं । इन कामों को नौकरों का काम समझती हैं पहले स्त्रियाँ सवेरे उठकर झाड़ू हाथ में लेतीं और सारा घर झाड़ू-पोंछकर, दो-तीन सेर गेहूं का आटा पीसती थीं । बर्तन आदि मलकर भोजन की व्यवस्था करती थीं । लेकिन आज की कुमारियाँ बिस्तर पर पड़े-पड़े अजीर्ण तथा मासिकधर्म सम्बन्धी शिकायत से परेशान रहती हैं । कुछ स्त्रियाँ, जो अकेले पति के साथ ही रहती हैं, बेकार रहती हैं । उन्हें चाहियें कि कोई गृह-उद्योग सीखें जिसमें उनका मन लगा रहे । शिल्प विद्या सीखना, बेल-बूटा काढ़ना, पीसना तथा सिलाई, कटाई का काम स्त्रियाँ बेकारी में कर सकती हैं । बेकार कभी नहीं बैठना चाहिये । प्रत्येक को कुछ न कुछ करते रहना चाहिये ।

(4) चिन्ता – घर में कई प्रकार की चिन्ताएं लगी रहती हैं रुपये-पैसे की चिन्ता, बच्चों की या घर के किसी और प्राणी की बीमारी की चिन्ता तथा पति के दुर्व्यसनी होने की चिन्ता । चिन्ता को चिता के समान कहा गया है । चिन्ता से बढ़कर स्वास्थ्य का नाश करने वाली कोई अन्य बात नहीं हैं इसलिए चिन्ता से बचना चाहिये । चिन्ता शरीर में घुन की तरह है, जिससे शरीर की कान्ति/सौन्दर्यता नष्ट हो जाती है और व्यक्ति दुबला-पतला हो जाता हैं अन्त में चिता पर ही उसे शान्ति मिलती है ।

कभी-कभी ऐसा भी होता है कि चिन्ता बरबस गले लग जाती है। संसार में धन ही सब कुछ है। इसलिए धन की रक्षा करनी चाहिये। कहा भी है—**"सर्वे गुणाः कांचनमाश्रयन्ति।"** सब कुछ कंचन में ही है। पैसा न हो तो कोई किसी से बात न करे। पैसे बिना मन में शान्ति नहीं रहती, सगे-सम्बन्धी सभी आदर करते हैं। नीतिशास्त्र में कहा गया है कि सम्बन्धियों के बीच निर्धन होकर रहने से मृत्यु श्रेष्ठ है। यदि सिर पर ऋण हो गया तो घबराना उचित नहीं है। परमात्मा पर भरोसा कर उद्योग करना चाहिये। चिन्ता करने से तो ऋण दिया नहीं जा सकता। ऐसी हालत में पत्नी को लज्जा त्याग कर पति के कष्टों में सहायता पहुँचानी चाहिए। उसे सान्त्वना देना चाहिए और स्वयं भी कोई काम करना चाहिये जिससे चार पैसे मिलें। विलायत और अन्य देशों में जैसे चीन, जापान आदि में स्त्रियाँ कुछ न कुछ उद्यम करती ही रहती हैं। इस प्रकार वे पति पर भार न बनकर स्वयं कुछ उपार्जन कर लेने में अपनी बड़ाई और सम्मान समझती हैं।

(5) द्वन्द्व – बच्चों की चिन्ता स्त्री को बहुत रहती है। किसी के बच्चे होते ही नहीं। किसी के पैदा होते मर ही जाते हैं। या किसी को लड़कियाँ ही पैदा होती हैं। विवाहित लड़कियों की चिन्ता भी माता को अधिक रहती है। ससुराल में उस पर क्या बीत रही होगी, कैसे वह सबको प्रसन्न रखती होगी आदि चिन्ताएं माता को लगी रहती है। कभी-कभी अपनी बहू की भी चिन्ता रहती है। यदि बहू से सास-ससुर को सुख प्राप्ति न हो सका, तो यह बड़े दुःख की बात है।

बहू समझती है कि पति हमारा है। अतः हमारी बात प्रधान होनी चाहिये। सास समझती है पुत्र हमारा है, इससे हमारी बात प्रधान माननी चाहिये, हमारा इस पर अधिकार है। मरण विचारे लड़के का होता है, किसे क्या कहें? नासमझ युवक कभी माँ के कारण बहू की ओर कभी बहू के कारण माँ की दुर्दशा करते हैं। इसलिए माता को बड़ी समझदारी से काम लेना चाहिये। सास को सोचना चाहिए कि उसकी बहू किसी की लड़की है। अतः अपनी ही लड़की के समान है। उसकी भूलों को प्रेम से क्षमा कर देना चाहिये

और उचित मार्ग बतला देना चाहिये। यदि सास उसकी माता बनकर रह सकेगी तो वह भी पुत्री बन कर रहेगी ही। इस विषय में मुनिश्री तरुण सागर लिखते हैं–

शादी से पहले वर-वधु की कुण्डली मिलाई जाती है। 36 गुण मिलाकर शादी करते हैं, इसके बावजूद जीवन भर 36 का आंकड़ा बना रहता है। मेरा मानना तो यह है कि वर-वधु की कुण्डली मिलाने की बजाय सास-बहु की कुण्डली मिल गई तो घर अपने आप स्वर्ग हो जायेगा। जिस घर में सास-बहु नाम के दो प्राणी प्रेम से रहते हैं, वह परिवार परिवार नहीं हरिद्वार है।

–कड़वे प्रवचन भाग 1 पृ. 114

घर में जब कोई व्यक्ति बीमार पड़ जाता है तो उसकी देखभाल करने वाला भी एक प्रकार से बीमार हो जाता है। स्त्री को चाहिए कि वह पूरे मनोयोग से रोगी की सेवा करे। रोगी अक्सर चिड़चिड़े स्वभाव के हो जाते हैं। उसी समय सम्हलना चाहिये, घबराने से काम नहीं चलता। पति का दुर्व्यसनी होना भी स्त्री के लिये चिन्ता का कारण होता है। विशेषकर जब पति जुआरी, शराबी अथवा वेश्यानुगामी हो जाता है तो पत्नी बहुत चिंतित हो जाती है। सचमुच वह चिन्ता का विषय है। कितने परिवारों का नाश इन्हीं दुर्व्यसनों के कारण हो गया, कितनी स्त्रियों ने आत्महत्या कर ली, कितनी स्त्रियाँ खुलेआम वेश्या हो गई। यह सामाजिक दुराचार तत्काल बंद होना चाहिये। सरकार को चाहिये कि इस दुराचार को रोकने में कड़ाई से काम ले। स्त्री को चाहिये कि धैर्य से काम ले और विनय और प्रेम से पति का दुर्व्यवहार छुड़ाए। यद्यपि यह अत्यन्त कष्टसाध्य है परन्तु सिवा इसके और मार्ग भी नहीं है।

भोग-विलास की अधिकता भी स्वास्थ्य नाश का जबरदस्त कारण हैं विवाह के आरम्भिक दिनों में प्रायः पति-पत्नी भोग-विलास की अधिकता के शिकार हो जाते हैं। किसी भी चीज की अति बुरी भयावह होती है। यौवन एक बरसाती नदी है, इसको मार्ग की कठिनाई का अनुभव नहीं होता। लेकिन यौवन की तरंग में बहकर अपना जीवन नष्ट कर लेना बुद्धिमानी नहीं है।

तरंगों पर नियन्त्रण रखना चाहिये। स्त्री-पुरुष को संयम से रहना चाहिये। इस प्रकार हमने देखा कि स्त्री का स्वास्थ्य और सौन्दर्य प्रधान कारण हैं जिससे वह पति की प्यारी बन सकती है। सौन्दर्य लिपिस्टक और पाउडर लगाने से नहीं बढ़ता। सुन्दरी स्त्री की शोभा वस्त्राभूषणों से नहीं, बल्कि उसके स्वास्थ्य से होती है। जो स्त्री स्वस्थ है और सुन्दर है वह पति का हृदय जीत सकती है और उसका जीवन सुखमय हो सकता है।

(5) शील और प्रेम – दाम्पत्य-जीवन में जिस प्रकार स्वास्थ्य और सौन्दर्य का प्रथम स्थान है, उसी पकार शील और प्रेम का भी द्वितीय स्थान है। सच तो यह है कि यदि स्त्री में शील और प्रेम नहीं तो वह लाख सुन्दरी रहकर भी गृहस्थ जीवन के अनुकूल नहीं रह सकती। चाहे पति उसके रूप माधुरी पर लट्टू रहे परन्तु वह घर की और पड़ोस की दृष्टि में प्यारी नहीं बन सकती। पति भी चार दिन की चांदनी की भाँति उसका मुँह जोहता रहेगा लेकिन फिर वह भी ऊब जायेगा। जिस स्त्री में शील है, पति के प्रति सच्चा प्रेम है, उसी को सच्ची सुन्दरी होने का सौभाग्य प्राप्त हुआ समझना चाहिये क्योंकि वह बीमारी, कुरूपता और वृद्धावस्था में भी अपने आन्तरिक सौन्दर्य के कारण सुन्दरी ही बनी रहेगी।

उपरोक्त बातें साधारण दिखाई पड़ती हैं, पर वस्तुतः ये इतनी महत्त्वपूर्ण हैं कि इन पर समुचित ध्यान देने से हमारा पारिवारिक जीवन सुख-शांतिमय बन सकता है।

7. दाम्पत्य-जीवन की सफलता के लिये

बड़ी-बड़ी आशाओं के साथ नवयुवक और नवयुवतियाँ दाम्पत्यजीवन के सूत्र में बँधते हैं। बड़ी-बड़ी रस्में अदा होती हैं। विवाह के रूप में बड़ा समारोह मनाया जाता है। गाने-बाजे, रोशनी, दावतों, लेन-देन, बारात, जुलूस आदि के साथ दो आत्माएं विवाह-सूत्र में बंधती हैं। परस्पर के नये आकर्षण से आरम्भिक दिनों दोनों का जीवन बड़ा सुखद बीतता है, परन्तु यह स्थिति

अधिक दिन नहीं रहती और दाम्पत्य जीवन कलह, अशांति, द्वेष, असन्तोष की आग में जलने लगता है ।

प्रथा के तौर पर जो प्रतिज्ञायें पुरोहित उच्चारण कर देते हैं, उनका व्यावहारिक-जीवन में नाम भी नहीं रहता । दाम्पत्य-जीवन एक-दूसरे के लिए बोझा बन जाता है । इसका कोई बाह्य कारण नहीं । अपितु, पति-पत्नी दोनों के ही परस्पर व्यवहार, आचरणों में विकृति पैदा होने पर ही अक्सर ऐसा होता है । यदि इन छोटी-छोटी बातों में सुधार कर लिया जाये तो दाम्पत्य-जीवन परस्पर सुख-शान्ति, आनन्द का केन्द्र बन जाये ।

दाम्पत्य-जीवन की सुख-समृद्धि एवं शान्ति के लिए सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि व्यवहार में एक-दूसरे की भावनाओं का ध्यान रखें । एक मोटा-सा सिद्धान्त है कि व्यक्ति दूसरों के साथ वैसा ही व्यवहार करे, जैसा वह स्वयं के लिये चाहता है । पति-पत्नी भी सदैव एक-दूसरे की भावनाओं, विश्वासों का ध्यान रखें । परन्तु देखा जाता है कि अधिकांश लोग अपनी भावना, विचारों में इतना खो जाते हैं कि दूसरे के विचारों, भावों का कुछ भी ध्यान नहीं रखा जाता वे उन्हें निर्ममता के साथ कुचल भी देते हैं । इस तरह दोनों की एकता, सहयोग के स्थान पर असन्तोष का उदय हो जाता है ।

अपनी इच्छानुसार पत्नी को जबर्दस्ती किसी काम के लिए मजबूर करना, उसकी इच्छा न होते हुए भी दबाव डालना, पति के प्रति पत्नी के मन में असन्तोष की आग पैदा करता है । इसी तरह कई स्त्रियाँ अपने पति के स्वभाव, रुचि, आदेशों का ध्यान न रखकर अपनी छोटी-छोटी बातों में ही उन्हें उलझाये रखना चाहती है । फलतः उन लोगों को विवाह एक बोझा-सा लगने लगता है । दाम्पत्य-जीवन के प्रति उन्हें घृणा, असन्तोष होने लगता है और यही असन्तोष उनके परस्पर व्यवहार में प्रकट होकर दाम्पत्य-जीवन को विषाक्त बना देता है । यदि किसी की मानसिक स्थिति ठीक न हो तो परस्पर लड़ाई-झगड़े होने लगते हैं । एक-दूसरे पर आरोप-प्रत्यारोप करते रहते हैं ।

पति-पत्नी का सदैव एक-दूसरे के भावों, विचारों एवं स्वतन्त्र अस्तित्व का ध्यान रखकर व्यवहार करना, दाम्पत्य-जीवन की सफलता के लिए

आवश्यक है । इसी के अभाव में आजकल दाम्पत्य-जीवन एक अशान्ति का केन्द्र बन गया है । पति की इच्छा न होते हुए, साथ ही आर्थिक-स्थिति भी उपयुकत न होने पर स्त्रियों की बड़े-बड़े मूल्य की साड़ियां, सौन्दर्य-प्रसाधन, सिनेमा आदि की मांग पतियों के लिए असन्तोष का कारण बन जाती है । इसी तरह पति का स्वेच्छाचार भी दाम्पत्य-जीवन की अशान्ति के लिए कम जिम्मेदार नहीं है । यही कारण है कि कोई घर ऐसा नहीं दीखता, जहाँ स्त्री-पुरुषों में आपस में नाराजगी, असन्तोष दिखाई न देता हो ।

परस्पर एक-दूसरे की भावनाओं में स्वतन्त्रता का ध्यान न रखने में एक मुख्य कारण अशिक्षा भी हैं यह कमी अधिकतर स्त्रियों में पाई जाती है । पर्याप्त शिक्षा-दीक्षा के अभाव के कारण भी मानसिक विकास नहीं होता, जिनके कारण एक-दूसरे की भावनाओं, व्यावहारिक जीवन की बातों के बारे में व्यक्ति को जानकारी नहीं मिलती । इसके निवारण के लिए प्रत्येक पुरुष को कुछ न कुछ समय निकाल पत्नी को पढ़ाने, उसका ज्ञान बढ़ाने के लिए प्रयत्न करना चाहिये । जीवन-साथी का समकक्ष होना आवश्यक है । अपने साथी की ज्ञान-वृद्धि विकास एवं कल्याण के लिए भी अन्य आवश्यक कार्यों की तरह ही प्रयत्न करना आवश्यक है, तभी वह जीवन में सहयोग, एकता, सामंजस्य का आधार बन सकती है । परन्तु देखा जाता है कि अधिकांश लोग इसमें दिलचस्पी नहीं लेते । मन, बुद्धि के विकास के अभाव में दाम्पत्य-जीवन सुखी और समृद्ध नहीं बन सकता ।

योग्य होकर भी, एक-दूसरे की भावनाओं का ध्यान रखते हुए भी कभी-कभी स्वभावतः ऐसा व्यवहार हो जाता है, जो पति-पत्नी में एक-दूसरे को अखरने लगता है । ऐसी स्थिति में किसी भी एक पक्ष को क्षमाशीलता, सहनशीलता का परिचय देकर विक्षोभ उत्पन्न न होने देने का प्रयत्न करना आवश्यक है । साथ ही दूसरे पक्ष को भी अपनी भूल को अनुभव कर, क्षमा मांगकर परस्पर मनो को साफ रखना चाहिये अन्यथा परस्पर मनोमालिन्य बढ़ जाता है और दाम्पत्य-जीवन में कटुता पैदा हो जाती है । महात्मा सुकरात, टालस्टाय, संत तुकाराम जैसे महापुरुषों ने अपनी फूहड़ और लड़ाकू स्त्रियों

को सहनशीलता, क्षमा, उदारता के साथ जीवन में व्यतीत किया था।

स्त्रियाँ तो बेचारी सदा से ही अपने पतियों के कटु स्वभाव, व्यवहार, निर्दयता, स्वेच्छाचार को भी सहन करके दाम्पत्य-जीवन की गाड़ी को चलाने में सहयोग देती रही हैं। भारतीय नारी का महान् आदर्श इसी त्याग, सहनशीलता और पतिव्रत-धर्म से निर्मित रहा है। पति-पत्नी में से जब किसी एक में भी कोई स्वाभाविक कमजोरी दीखती हो तो उसका सहनशीलता के द्वारा निराकरण करके गृहस्थ की गाड़ी को चलाने में पूरा-पूरा प्रयत्न करते रहना आवश्यक है।

पति-पत्नी दोनों का जीवन एक सिक्के के दो पहलू हैं। दोनों में अभिन्नता है, एक्य है। भारतीय-संस्कृति में तो पुरुष और स्त्री को आधा-आधा अंग मानकर एक शरीर की व्याख्या की गई है, जिसमें पुरुष को अर्द्धनारीश्वर एवं स्त्री को अर्द्धांगिनी कहा गया है। दाम्पत्य-जीवन स्त्री-पुरुष की अनन्यता का गठबन्धन है। अतः दुर्व्यवहार करना, परस्पर अविश्वास, एक-दूसरे के प्रति घृणा को जन्म देता है और इसी से दाम्पत्य-जीवन नष्ट-भ्रष्ट हो जाते हैं। अपनी प्रत्येक चेष्टा में स्पष्टता, दुराव, छिपाव का अभाव रखकर अभिन्नता प्रकट करते हुए पति-पत्नी को एक-दूसरे का विश्वास, मानसिक एकता प्राप्त करना चाहिये। वैसे जहाँ तक बने, प्रत्येक व्यक्ति को अपने बाह्य जीवन में भी रहस्य, छल, बनाव, दिखावे से बचना चाहिए, क्योंकि इस बाहरी व्यवहार को देखकर भी पति-पत्नी एक-दूसरे पर सन्देह करने लगते हैं। वे सोचते हैं—"हो सकता है, यही व्यवहार हमसे किया जा रहा हो।" और संदेह की भूल-भुलैया में ही अनेकों दम्पत्तियों का जीवन क्लिष्ट, उलझा हुआ, दुरूह बन जाता है।

पति-पत्नी दोनों अपने मानसिक क्षेत्र में बहुत बड़ा कुटुम्ब होते हैं। अपनी मानसिक आवश्यकताओं के आधार पर पति अपनी पत्नी से ही विभिन्न समय में, सलाहकार की तरह मन्त्री की-सी योग्यता, भोजन करते समय—माँ की वात्सल्यता, आत्म-सेवा के लिए—आज्ञा-पालक नौकर, जीवन पथ में एक अभिन्न मित्र, गृहिणी, रमणी आदि की आकांक्षा रखता है। इसी

प्रकार पत्नी भी पति से जीवन निर्वाह के क्षेत्र में माँ-बाप, दुःख-दर्द में अभिन्न साथी, कल्याण और उन्नति के लिए सद्गुरु, कामनाओं की तृप्ति के लिए भर्तार, सुरक्षा-संरक्षण के लिए भाई आदि। जब परस्पर इन मानसिक आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं होती है तो एक दूसरे में असन्तोष, अशान्ति पैदा हो जाती है, जिससे दाम्पत्य-जीवन में विकृति पैदा हो जाती है।

एक-दूसरे की भावनाओं का ध्यान रखते हुए, एक-दूसरे की योग्यता वृद्धि, खासकर पुरुषों द्वारा स्त्रियों के ज्ञानवर्धन में योग देकर, परस्पर क्षमाशीलता, उदारता, सहिष्णुता, अभिन्नता, एक-दूसरे मानसिक तृप्ति करते हुए दाम्पत्य-जीवन को सुखी, समृद्ध बनाया जा सकता है। अधिकतर इसके लिए पुरुषों को ही अधिक प्रयत्न करना आवश्यक है। वे अपने प्रयत्न और व्यवहार से गृहस्थ-जीवन की काया-पलट कर सकते हैं। अपने सुधार के साथ ही स्त्रियों की शिक्षा-दीक्षा, ज्ञान-वृद्धि, उनके कल्याण के लिए हार्दिक प्रयत्न करके दाम्पत्य-जीवन को सफल बनाया जा सकता है। धैर्य और विवेक के साथ एक-दूसरे को समझते हुए अपने स्वभाव, व्यवहार में परिवर्तन करके ही दाम्पत्य-जीवन को सुख-शान्तिपूर्ण बनाया जा सकता है।

8. दाम्पत्य-जीवन सफल कैसे बने

व्यक्ति अपने सामाजिक जीवन में कई मित्र बनाता है और उन्हें भूलता रहता है, उन मित्रताओं के मूल में कोई न कोई स्वार्थ अवश्य रहता है। इसीलिए वे बनती हैं और टूटती भी हैं। जीवनसाथी को अंगीकार करने का धर्मानुष्ठान विवाह ही एकमात्र ऐसी मित्रता है, जो निःस्वार्थ भाव से आरम्भ होता है, आत्मत्याग से पोषित, प्रेम से सिंचित, पल्लवित और पुष्पित होता है। ये भाव आजीवन बने रहे तो दाम्पत्य-जीवन में सुख-शांति और आनन्द के मधुर फल लगते हैं।

कई लोग समझते हैं कि सुखी दाम्पत्य-जीवन के लिए प्रचुर मात्रा में धन आवश्यक है। पर्याप्त मात्रा में सुख-सुविधाओं के साधन पास में हों तो

व्यक्ति चिरन्तन उनका लाभ उठाता रह सकता हैं यह मान्यता अब तक के हज़ारों-लाखों और करोड़ों द्वारा कही जाये तो भी कम है। दम्पत्तियों के अनुभव में गलत सिद्ध हुई है। सच तो यह है कि किसी भी दम्पत्ति ने आज तक यह अनुभव नहीं किया कि धन-सम्पदा के कारण वे दुःखी और क्लान्त विवाहित जीवन जी रहे हैं। धन के अभाव से उत्पन्न होने वाली पारिवारिक विवशताएं अवश्य कष्ट पहुँचाती हैं। परन्तु वह कष्ट भी मधुर दाम्पत्य सम्बन्धो के कारण कम पीड़ा पहुँचाते हैं। पति-पत्नी का प्रेम उन कष्टों के घाव पर मरहम का काम करता है।

अक्सर यह देखा गया है कि धनवान् व्यक्तियों का दाम्पत्य-जीवन निरानन्द और नीरस ही हो जाता है। पति धन कमाने में इतना व्यस्त रहता है कि वह पत्नी से दो प्रेम भरे बोल भी नहीं बोल सकता। इसके अभाव में पत्नी धन और ऐश्वर्य में उस सुख की तलाश करती है, परन्तु वहाँ निराश होना पड़ता है। फलतः सारा आक्रोश पति या परिवार के अन्य सदस्यों पर उतरता है, तो दाम्पत्य सम्बन्ध कटुतापूर्ण तथा मन-मुटाव से भर जाता है।

कुछ लोगों की यह भी मान्यता है कि सुखी दाम्पत्य-जीवन के लिए पति-पत्नी का शिक्षित होना अनिवार्य है। शिक्षित पति-पत्नी अपने दाम्पत्य सम्बन्धों को अधिक सुलझा और निखरा तो बना सकते हैं। परन्तु दाम्पत्य-जीवन के लिए जो दूसरे तत्त्व अनिवार्य है, वे न हों तो शिक्षा उल्टे दाम्पत्य सम्बन्धों में विकार उत्पन्न कर देती है। शिक्षा दाम्पत्य-जीवन को सरस भी बना सकती है और नीरस भी। एक बारगी शिक्षा न भी हो और दाम्पत्य सम्बन्ध उन सब अपेक्षाओं को पूरा करते हुए चल रहे हो जो कि उसके लिए आवश्यक हो तो पति-पत्नी अशिक्षित रहते हुए भी सुखी और प्रेमपूर्ण रह सकते हैं। करोड़ों लोग अशिक्षित रहते हुए भी दाम्पत्य-जीवन को सफलतापूर्वक जी रहे हैं। जबकि लाखों शिक्षित व्यक्ति उन गुणों के अभाव में तनावपूर्ण जीवन जी रहे हैं। आवश्यक नहीं है कि पढ़े-लिखे पति-पत्नी का ही विवाहित जीवन सुखमय, शानितमय रहता है, यह सब पति-पत्नियों में ऐसा नहीं होता, बहुत से पढ़े लिखों में अधिक विवाद देखे जाते हैं, और बहुत स अनपढ़ पति-पत्नी सुखी जीवन जीते हैं। यह सब व्यवहार पर निर्भर करता है।

दाम्पत्य-जीवन को सुखी बनाने के लिए धन भी आवश्यक है और शिक्षा भी। परन्तु मूल आवश्यकता कुछ और ही है। धन और शिक्षा वही काम करते हैं जो सोने के आभूषण बनाने के लिए आंच और हथौड़ी हो तो सोने का आभूषण बन जाता है। परन्तु सोना ही नहीं हो तो आभूषण किस धातु का बनेगा। धन और शिक्षा से दाम्पत्य-जीवन को सुविधा सम्पन्न बनाया जा सकता है। परन्तु आनन्दमय नहीं। आनन्दमय दाम्पत्य-जीवन के लिए उन गुणों की आवश्यकता है, जो पति-पत्नी के दो शरीरों में बसने वाली दो आत्माओं को एक सूत्र में आबद्ध कर दें। वे गुण हैं प्रेम, आत्मीयता, स्नेह, त्याग और परिमार्जित भावनाएं तथा परिमार्जित दृष्टिकोण।

प्रेम ही वह सूत्र है जो पति-पत्नी को बांधता है। न केवल बांधता है वरन् आत्मोसर्ग, त्याग और निस्वार्थ भावना को भी जन्म देता है। इसका आधार न तो सौन्दर्य है और न कामुकता। इस दिव्य अमृत की वर्षा एक-दूसरे के दृष्टिकोण को समझने और एक-दूसरे की सुख-सुविधाओं के लिए अपनी आवश्यकताओं की उपेक्षा करने पर होती है। स्त्री-पुरुषों के स्वभाव मिलते हों और दोनों एक-दूसरे के लिए आत्मदान की भावना रखते हों तो दीन-हीन स्थिति में कम साधन और कम शिक्षा में भी हँसी-खुशी का मधुर जीवन जिया जा सकता है।

अशिक्षित और ग़रीब दम्पत्तियों में जो प्रेम, जो आनन्द और जो संगीत होता है उसका कारण यही दिव्य प्रेम है। सौभाग्य से भारतीय परिवारों में जो आधुनिकता से कोसो दूर है। लड़कियों को यह भावनायें विरासत के रूप में मिलती हैं और वे इन्हीं भावनाओं के बल पर पति की सर्वस्व स्वामिनी बन जाती हैं, उन्हें अपनी इच्छानुसार मोड़ सकती हैं। आधुनिक परिवारों में दाम्पत्य-जीवन का आनन्द स्रोत सूख जाने का कारण यह नहीं है कि उनमें एक-दूसरे के प्रति कोई भावना नहीं होती। भावनाएं होती तो है परन्तु उन भावनाओं से भी अधिक महत्त्व अपने स्वार्थ को दिया जाता हैं आधुनिक शिक्षित परिवारों में तनावपूर्ण दाम्पत्य सम्बन्धों का कारण यह है कि वहाँ पति-पत्नी एक-दूसरे की सुविधाओं से अधिक अपने स्वार्थ को महत्त्व देते हैं। कहना नहीं होगा कि ऐसा दाम्पत्य-जीवन आत्मिक कम व्यावसायिक सम्बन्धों

जैसा अधिक होता है, जो अपनी स्वार्थपूर्ति में तनिक-सी भी कमी आ जाने पर चटखने लगता है ।

असुन्दर और कुरूप जोड़ियां भी प्रेम का अमृत लेकर हँसी-खुशी तथा मौज-मस्ती की जिन्दगी जीती देखी जा सकती है । जबकि रूपवान और सुन्दर दम्पत्ति भी प्रेम के अभाव में क्लेशपूर्ण जीवन जीने के लिए विवश देखे जाते हैं । प्रायः जो सुन्दर दम्पत्ति शारीरिक आकर्षण से आकृष्ट होकर विवाह बन्धन में बंधते हैं, असफल जीवन जीने लगते हैं । क्योंकि शरीर की सुन्दरता कुछ ही समय तक बनी रहती है और वे प्रेम भावनायें बढ़ाने की अपेक्षा अपना सौन्दर्य सुरक्षित करने की ओर ही अधिक प्रयत्नशील रहते हैं । ऐसे दम्पत्तियों के जीवन में दो-चार बच्चे होने पर नरक का सा वातावरण बन जाता है क्योंकि तब सौन्दर्य ढल चुका होता है और प्रेम-भावना का विकास न होने के कारण दोनों एक-दूसरे से जल्दी ऊब जाते हैं । कहने का अर्थ यह नहीं कि सभी सुन्दर जोड़ियाँ असफल दाम्पत्य-जीवन जीती है यदि वे भी प्रेम भावना के विकास की ओर ध्यान दें तो सुन्दरता के ढल जाने पर भी हँसी-खुशी का जीवन बना रह सकता है क्योंकि बच्चे हो जाने पर तो खुशी से दाम्पत्य-जीवन में और भी परिपक्वता तथा निखार आता है ।

आत्मदान प्रगाढ़ प्रेम की आत्मा है। उसमें एक दूसरे की आवश्यकताओं का इतना ध्यान रहने लगता है कि अपनी आवश्यकताएं एकदम उपेक्षणीय लगने लगती है । साथी की सुविधा का ध्यान रखना ही अपना धर्म बन जाता है, उसमें साथ-साथ जीने तथा साथ-साथ मरने की दृढ़ भावना बन जाती है । वहाँ मृत्यु भी आनन्दपूर्ण बन जाती है । सन् 1912 में एक ऐसा ही दृश्य टाईटेनिक नामक अंग्रेज़ी जहाज पर देखने में आया था । समुद्री तूफान के कारण वह जहाज डूबने लगा । उसके कर्मचारी लाइफ वोटों द्वारा यात्रियों तथा आवश्यक सामान को बचाने लगे । उसी जहाज पर स्टास नामक दम्पत्ति भी यात्रा कर रहे थे । जहाज में इतना पानी भर गया कि दोनों में से एक को ही बचाया जा सकता था । स्टास ने अपनी पत्नी इसाडोरा को बचाने की सोची और इसाडोरा स्टास को लाइफबोट पर जाने के लिए जिद

करती रही। अन्त में स्टास ने अपनी पत्नी को उठाकर लाइफबोट में बिठा दिया। जहाज डूबने को ही था इसाडोरा लाइफबोट से कूदकर अपने पति के पास आ गई और बोली—"मैं अकेली जीकर क्या करूँगी?" क्यों न हम दोनों साथ-साथ ही मृत्यु को वरण करे। दोनों ने एक साथ जलसमाधि ली और मौत को अपने गले लगाया। इसाडोरा द्वारा कहे गये इन शब्दों में कितनी आत्मीयता, कितना प्रेम और कितनी आत्म भावना थी?

विश्वास दाम्पत्य-प्रेम का प्राण हैं पति-पत्नी को एक-दूसरे पर इतना प्रगाढ़ विश्वास होना चाहिए कि उसमें दूराव, छिपाव का कहीं कोई नाम भी न रहे। नव-दम्पत्तियों में, विशेषतः युवकों में अपनी पत्नी के प्रति सन्देह की भावना रहती है। पत्नी भी पति का यकायक विश्वास नहीं कर पाती। इसका कारण अपरिचय ही हैं जैसे-जैसे पति-पत्नी एक-दूसरे के घनिष्ठ सम्पर्क में आते जायें वैसे-वैसे सन्देह की सम्भावना को निर्मूल करते जाना चाहिये, उसे जड़ से ही उखाड़ फेंकना चाहिये। दुराव-छिपाव, दिखावटी और बनावटी व्यवहार की नीति जल्दी बदली जा सके, उतनी जल्दी बदल डाली जाये और परस्पर विश्वास उत्पन्न किया जाये।

उदारता विश्वास का पोषक तत्त्व है। दाम्पत्य-जीवन में कई ऐसे अवसर भी आते हैं जब मन में कोई सन्देह पलता है और पति या पत्नी किसी अनजाने संकोच के कारण एक-दूसरे से कह या पूछ नहीं पाते। दाम्पत्य-जीवन को सफल बनाने में यह स्थिति बाधक है। सन्देह का अंकुर जब बढ़ने से नहीं रोका जाता तो वह घृणा और अविश्वास के वृक्ष के रूप में बदलने लगता है और जरा-जरा सी बातों पर एक-दूसरे पर आक्षेप तथा छींटाकशी की प्रवृत्ति बल पकड़ती है। यह घृणा अविश्वास को इतना बढ़ा देती है कि विग्रह की स्थिति तक बन जाती हैं

उचित तो यह है कि सन्देह का वातावरण ही न बनने दिया जाये। सन्देह उत्पन्न होता है पति या पत्नी से कोई बात छुपाने पर और किसी पक्ष को यदि सन्देह हो भी जाये तो सम्मानपूर्वक उस दूसरे से पूछकर दूर कर लेना चाहिये। ये बातें परस्पर से ही संबंधित है। इनमें न तो किसी मध्यस्थ की

आवश्यकता रहती है और न किसी माध्यम की । घर कर गये सन्देहजनक तत्त्व और भी गड़बड़ी पैदा करते हैं । सद्भावनापूर्वक एक-दूसरे से पूछ लेना ही अपने सन्देह को दूर करने का एकमेव मार्ग है ।

दुराव-छिपाव के अतिरिक्त उपेक्षापूर्ण व्यवहार भी सन्देह का वातावरण बना देता है । पति, पत्नी के लिए सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण और पत्नी, पति के लिए । सैद्धान्तिक रूप से तो इस तथ्य को हर कोई स्वीकार करता है परन्तु व्यवहार में यदा-कदा यह तथ्य भुलाया भी जाने लगता है । कई बार ऐसी स्थितियां भी बनती हैं जिसमें उपेक्षा, मनमुटाव भी पैदा कर देती, जैसे स्त्री बीमार है और पुरुष अपने काम-काज में इतना व्यस्त हे कि उसे पत्नी के स्वास्थ्य की परवाह करने की फुरसत ही नहीं मिलती । फुरसत निकाली तो जा सकती है परन्तु पति यदि स्त्री के स्वास्थ्य को हल्के रूप में लेता है तो वह स्थिति दाम्पत्य-जीवन को विषाक्त बना देती है । स्मरण रखा जाना चाहिए कि पति-पत्नी एक-दूसरे के अभावों की पूर्ति और परेशानियों में सहायक की भूमिका लेकर जीवन संग्राम में उतरते हैं । फिर एक-दूसरे की उपेक्षा हो तो सन्देह का जन्म अस्वाभाविक नहीं कहा जा सकता ।

दाम्पत्य-जीवन को स्वर्गोपम बनाने में भावनात्मक पक्ष महत्त्वपूर्ण होता हैं भावनात्मक परिष्कार का अर्थ है पति-पत्नी एक-दूसरे के पति कर्त्तव्यनिष्ठ और सद्भाव सम्पन्न हों । पुरुष में पुरुषत्व के गुण हो और स्त्री में नारीत्व के तो कोई कारण नहीं कि दाम्पत्य-जीवन में आनन्द की धारा न बहे । दाम्पत्य-जीवन के सभी क्रिया-कलाप, कार्यक्रम और योजनाएं इन्हीं गुणों के आधार पर बनती या चलती हैं । पुरुषत्व का अर्थ है—शक्ति, साहस, सक्रियता और नियमितता तथा नारीत्व में कोमलता, मृदुलता, दयालुता, स्नेह, सभ्यता और सहानुभूति के गुण पूर्ण रूप से विद्यमान होने चाहियें ।

पति-पत्नी में अनेक गुणों का पमीहा स्थान हो तो प्रेम, विश्वास, आत्मीयता आदि परिमार्जन और परिवर्धन अपने आप होता रहता है तथा जीवन में घनिष्ठता भी अपने आप ही बढ़ती रहती है तथा उनके जीवन में आनन्द की कोई कमी नहीं रहती । एक बात को स्मरण और रखना चाहिये कि

गल्तियां सभी से होती हैं । उनके कारण छोटी-छोटी बातों के लिए एक-दूसरे का झिड़कना, डाँटना, अपशब्द कहना या कोसना मूर्खता का चिन्ह है । इन बातों से दाम्पत्य-जीवन की जड़ें धीरे-धीरे रेदी अर्थात् कमजोर होती जाती हैं ।

सफल दम्पत्ति ही सुयोग्य सन्तानें उत्पन्न कर सकते हैं । सद्गुणी नागरिकों का जन्म सुयोग्य सन्तानों के रूप में होता हैं अतः दाम्पत्य-जीवन की सफलता या असफलता पूरे समाज को प्रभावित करती है । इसलिए न केवल व्यक्तिगत या पारिवारिक दृष्टि से वरन् सामाजिक दृष्टि से भी गार्हस्थ्य योग की साधना अनिवार्य है ।

9. दाम्पत्य-जीवन की साधना के मंत्र

(1) गृहस्थाश्रम पति और पत्नी की साधना का आश्रम है । यहाँ जीवन जीने के लिये, धर्म, अर्थ और काम की साधना की जाती है ।

(2) पति एवं पत्नी दोनों एक-दूसरे के पूरक हैं, सहायक हैं, मित्र हैं । दोनों का काम एक-दूसरे के गुणों की वृद्धि करना है, कमियों को दूर करना है और परस्पर अभिन्नता बनाये रखना है । इसके लिए प्रत्येक को संयम, सहनशीलता एवं स्वार्थ त्याग की भावना अपने अन्दर बढ़ाने की आवश्यकता है ।

(3) पति का अर्थ भर्त्ता है । भर्त्ता का अर्थ भरण और पोषण करने वाला है । पत्नी में उसकी उन्नति के लिए जिसकी कमी है, वह उसे लाकर दे, उसका उसमें भरण करे और जो शक्ति अविकसित है या कम है उसका पोषण करे, उसकी वृद्धि करे । वह उसे सदा संतुष्ट रखे । उसके मानसिक, शारीरिक एवं आत्मिक विकास का सदा ध्यान रखे और उन्हें विकसित होने में अपना पूरा सहयोग दे ।

(4) पत्नी साधिका है । जिस प्रकार एक साधक अपने प्रभु की साधना के लिए अपना सब कुछ समर्पण कर देता है, उसी प्रकार अपने मन में द्वैत की

भावना न रखकर पति को ही अपना आराध्य देव मानकर अपना भला और बुरा सब कुछ उन्हें सौंप दें। अपने लिए बचाकर कुछ भी शेष न रखे। जो कुछ करे पति के लिए। पति कुमार्गगामी हो तो उसे सुमार्ग पर लाने के लिए अपना सर्वस्व तक चढ़ा दे। ध्यान रहे पत्नी को शासक नहीं बनना है। साधिका सदा सेविका होती है। सुधार के लिए शासन की नहीं सेवा की आवश्यकता होती है। कुमार्गगमन एक मानसिक रोग है, इस रोग के लिए उपचार की सेवा की आवश्यकता है। अतएव उपयुक्त उपचार करना ही उसके लिए श्रेयस्कर है। कुमार्ग छुड़वा देना ही पत्नी की साधना का फल है।

(5) पितृ ऋण के उद्धार का एकमात्र साधन दाम्पत्य-जीवन की शान्ति है। सन्तान का उत्पादन और सुशिक्षण योग्य दम्पत्ति के बिना कदापि सम्भव नहीं है। योग्य माता-पिता के ही योग्य सन्तान होती है, इसलिए योग्य सन्तान के लिए स्वयं की सारी त्रुटियों को निकाल फैंकने में आना-कानी नहीं होनी चाहिये।

(6) दाम्पत्य-जीवन का उद्देश्य भोग-विलास नहीं है, योग है। इसलिए प्रत्येक उन साधनों को अपनाना चाहिये जिससे परस्पर का द्वैत नष्ट हो और आत्मरति एवं आत्मप्राप्ति की ओर दम्पत्ति गतिवान हो। मोह की अपेक्षा प्रेम की परस्पर जितनी वृद्धि होगी और मान-अपमान जितना दोनों में कम होगा इस दिशा में दोनों की उतनी ही उन्नति होगी।

(7) भोग का शमन भोग से नहीं होता, भोगने से वासनाएं बढ़ती हैं संसार के सभी पदार्थ वासना को बढ़ाते हैं, इसलिए जितने से शरीर, मन तथा आत्मा की उन्नति हो, उन्हें सुख मिले उतने का ही उनसे सम्पर्क रखना चाहिये अन्यथा इससे कलह का बीज बढ़ता है और दाम्पत्य-जीवन का उद्देश्य विफल हो जाता है।

(8) स्त्री-पुरुष का सम्बन्ध यज्ञ के लिए है। यज्ञ में ईश्वरी भावना है, भोग नहीं। ईश्वरीय भावना को पुष्ट करने के लिए ही दाम्पत्य-जीवन का निर्माण किया गया है, इसलिए स्त्री और पुरुष दोनों को ही पर-पुरुष एवं पर-स्त्री के विषय में किसी प्रकार की भोगभावना नहीं रखनी चाहिये।

स्वपुरुष और स्वस्त्री में भी सन्तान रूपी यह फल प्राप्ति के लिए या भावना का ही उपयोग करना चाहिये । भोग से जितना दूर रहा जाये उतना ही ठीक ।

(9) दाम्पत्य-जीवन का मूलमंत्र प्रेम है । प्रेम में त्याग है । अपने लिए कुछ नहीं । इस भावना की पुष्टि के लिए यह जीवन माध्यम है । इसलिए न यहाँ स्वार्थ है, न वासना, न भोग । फिर बदला तो होगा ही क्यों ? अतएव इस बात के ज्ञान पर निरन्तर जागरण उसकी कुंजी है और भूल होने पर पश्चाताप ही उसका सच्चा प्रतिशोध हैं इसमें मान-अपमान रहने से प्रेम की उतनी ही न्यूनता होती तब कौन छोटा और कौन बड़ा, कौन दास और कौन मालिक ? फिर किसका मान और किसका अपमान ? सब एक है, सब अपने हैं ।

10. दाम्पत्य-जीवन को सफल बनाने वाले कुछ स्वर्ण-सूत्र

पति-पत्नी में कभी झगड़ा नहीं होना चाहिये । यह शोभनीय भी नहीं है और कल्याणकारी भी नहीं है । पति-पत्नी के झगड़े का मतलब है पूरे परिवार का नाश और उनके प्रगाढ़ प्रेम का अर्थ है, सुन्दर परिवार, सुखदायी गृहस्थ । पति-पत्नी के पारिवारिक लड़ाई-झगड़े के कुछ बाह्य और कुछ मनोवैज्ञानिक कारण होते हैं । उनमें से अकर्तव्यशीलता भी एक विशेष कारण है । यदि पति-पत्नी परस्पर अपने बाह्य और मनोवैज्ञानिक कर्तव्यों को सावधानीपूर्वक पूरा करते रहे, तो उन दोनों में कभी कोई लड़ाई-झगड़ा न हो ।

बाह्य कर्त्तव्यों में पति का सबसे पहला कर्त्तव्य है कि वह पत्नी के स्वास्थ्य का अपनी ओर से पूरा ध्यान रखें । बहुत स्वार्थी पति अपनी सेवा लेने के साथ-साथ पत्नी को हर समय किसी-न-किसी काम में लगाये रखते हैं । उनका विचार रहता है कि पत्नी से जितना ज्यादा-से-ज्यादा काम लिया जा सके, लिया जाना चाहिये । वह तो काम करने और सेवा करने के लिए ही आई है । जगह पर पानी, जगह पर खाना, यहाँ तक कि कपड़े लत्ते और

किताब, क़ाग़ज, स्याही, दवात तक जगह पर ही लेते हैं। किसी वस्तु अथवा किसी काम के लिए जगह से उठना जानते ही नहीं। यहाँ तक कि कलम-पेंसिल तक उसी से बनवाते और फाउण्टेनपेन में रोशनाई तक उससे ही भरवाया करते हैं। इतना ही नहीं इन तुच्छ कामों के लिए भी उन्हें आराम करती हुई अथवा कोई और आवश्यक काम करती हुई पत्नी को उठा देने में जरा भी दया या संकोच नहीं करते। बहुत से बाबू साहबों को तो पत्नी ही कोट-पतलून और टाई-जूते पहनाती हैं और हर रोज जूते पर पालिश किया करती हैं।

रसोई और नाश्ते के संबंध में तो उसे जितना हैरान किया जा सकता है किया जाता है और यह मुसीबत छुट्टी के दिन और भी बढ़ जाती है। जरा यह बनाना, थोड़ा वह भी बना लेना, आज सुबह इसकी चाय है, शाम को उसका भोजन है, बहुत दिन से यह नहीं बना, वह चीज खाये तो कई दिन हो गये पत्नी की ऐसी रेल बन जाती है कि बेचारी पत्नी को दिन भर दम मारने और चूल्हे, अंगीठी के पास से उठने की फुरसत नहीं मिलती। आप तो कोच, कुरसी या चारपाई पर पड़ गये और मिनट-मिनट पर तरह-तरह की फरमाइशें चलाने लगे। अपनी इस नवाबी में उन्हें इस बात का जरा भी ध्यान नहीं रहता है कि उनकी इस फैल-सूफी से बेचारी पत्नी की हड्डी-पसली टूट जाती है।

किसी प्रकार यदि बेचारी को थोड़ा-सा आराम का अवसर मिल भी जाता है, तो फिर उनकी ऐसी गप्प और हा-हा-ही-ही चलती है कि उसके आराम का सारा समय पलक उठने, गिरने, जम्हाने और अलसाने में ही निकल जाता है और वह फिर थकी-थकी उठ कर दूसरे समय के काम में लग जाती है। यह सौभाग्य ही कहिये, उनकी पत्नी कलाकार अर्थात् संगीत या वाद्य की जानकार हुई तब तो गारण्टी के साथ उसके दिन का ही नहीं रात का भी आराम का समय बहुत-सा बेकार चला जाता है। खा-पीकर आराम से पकड़ कर पति देवता को संगीत की इच्छा होती है और वह पत्नी को महफ़िल लगाने के लिये मजबूर कर देते हैं। जब संगीतज्ञ पत्नी से विवाह किया है तो फिर उसका लाभ क्यों न उठाया जाये? काम के बाद ही तो वह समय मिलता

है, जिसमें उनकी कला का रस लिया जा सकता है। अनेक महानुभाव तो आप आराम से पड़कर यदि पैर नहीं दबवाते तो आधी-आधी रात तक उपन्यास सुना करते हैं। उनका तो कार्य दस बजे दिन से आरम्भ होता है, पत्नी का यदि चार-पाँच बजे से आरम्भ होता है तो इससे क्या वह तो अपनी जानते हैं पत्नी अपना मरे भुगते।

जब घर में ही धुल जाते हैं तो आवश्यक क्या कपड़े इस परवाह से पहने जायें कि कम-से-कम चार-पाँच दिन तक साफ रह सकें? हर दूसरे-तीसरे दिन कपड़ों का एक ढेर उसके लिये तैयार रहता है। बच्चों के कपड़ों के साथ वह दोपहर को पति देवता के कपड़े धोती, सुखाती और लोहा करती है। इस प्रकार बहुधा पत्नियों से इतना काम लिया जाता है कि जरा आराम करने का अवसर नहीं मिलता, जिसका फल यह होता है कि उसका स्वास्थ्य खराब हो जाता है, उसका स्वभाव चिड़चिड़ा हो जाता है और वह बात-बात पर झल्लाने, रोने लगती है। गृह-कलेश आरम्भ हो जाता है।

वे बुद्धिमान गृहस्थ जिन्हें पारस्परिक प्रेम, सद्भावना और सुख-शांति वांछित है, पत्नी से उतना ही काम ले जितना उचित और आवश्यक है। जो उनके अपने काम हो वे सब स्वयं ही करें। पारिवारिक जीवन में आलस्यपूर्ण नवाबी चलाना ठीक नहीं। पत्नी के पास घर-गृहस्थी और बच्चों का पहले से ही इतना काम होता है कि उसे समय नहीं रहता। इस पर अपना काम सौंप कर काम की इतनी अति न कर दीजिये कि उसका शरीर टूट जाये। पत्नी जितनी अधिक स्वस्थ और प्रसन्न रहेगी उतनी ही मधुर और सरस होती चली जायेगी।

बहुत से स्वार्थी लोग बड़प्पन और अधिकार के अहंकार में हर वस्तु में अपना 'लाइन्स शेयर'—(सिंह भाग) रखते हैं। वे नाश्ते और भोजन की सबसे अच्छी चीजें अधिक मात्रा में स्वयं उपभोग करते हैं। जो कुछ थोड़ा-बहुत बचता है, वह प्रसाद रूप में पत्नी को मिलता है। यही हाल बाज़ार से लाये फल, मिठाई आदि में भी होता है। यह बहुत ही हेय और क्रूर स्वार्थ है। इस व्यवहार की अधिक पुनरावृत्ति होने और यह समझ लेने पर कि पति

का इसमें केवल स्वार्थ ही नहीं अहंकार भावना और कमाई का अधिकार भी शामिल है, यदि पत्नी का मन उससे फिर जाता है तो ज्यादा दोष नहीं दिया जा सकता है। ऐसे स्वार्थी पशुओं से पत्नी को ही नहीं पूरे संसार को घृणा करनी चाहिये। वे इसी योग्य होते हैं।

अच्छे और भले पति हर अच्छी वस्तु को प्रेमपूर्वक अपनी प्रियतमा को ही अधिक-से-अधिक खिलाने-पिलाने में तो और सुख अनुभव करते हैं। चूंकि वे कमाई करते हैं इसलिये उन्हें अपना यह कर्त्तव्य अच्छी तरह याद रहता है कि कहीं संकोच-वश पत्नी किन्हीं वस्तुओं को जी भर कर न खाने का अभ्यास न कर ले अथवा खाने में संकोच करे। वे अपने आप अपने सामने अथवा अपने साथ बिठा कर खिलाने का ही यथासम्भव प्रयत्न करते हैं। ऐसे पतियों की पत्नी कितनी प्रसन्न और सुखदायक रहती है इसका अनुमान सहज नहीं।

पहनने, पहनाने में भी यह विषमता अच्छी नहीं। अनेक पति अपने लिये तो जब-जब अच्छे-से-अच्छे और नये कपड़े बनवाते रहते हैं, तब भी कमी महसूस करते रहते हैं। किन्तु पत्नी के वर्षों पहले खरीदी दो-चार साड़ियाँ उन्हें शीघ्र ही खरीदीं, जैसी मालूम होती हैं। जैसे सुन्दर कपड़े अपने लिए बनवाते हैं, वैसे पत्नी के लिए नहीं। ऐसे ''फैलसूप'' पति अपनी पत्नी का पूरा प्यार कभी नहीं पा सकते। उचित यह है कि पुरुष होने के नाते पति मोटे, सस्ते और सादे कपड़े पहने और पत्नी को अच्छे-से-अच्छे कपड़े पहनाये। वह सुन्दर है, सुकुमार है, वस्त्र उसकी शोभा है। अपने से अच्छे कपड़े पत्नी को पहनाने वाले पति अपनी पत्नी पर बिना मंत्र के वशीकरण कर देते हैं और प्यार में बदली उसकी कृतज्ञता का आनन्द प्राप्त करते हैं। यदि अपने से अच्छे न भी पहनाये जायें तो कम-से-कम उस स्तर पर उस मात्रा का तो प्रबन्ध किया ही जाना चाहिये, जो स्वयं अपने लिए करते हैं। इसी प्रकार साबुन, तेल आदि का भी प्रबन्ध पत्नी के लिए अपने से अच्छा ही करना चाहिये।

इन कतिपय पदार्थिक कर्तव्यों के साथ-साथ पति को कुछ

मनोवैज्ञानिक कर्तव्यों का भी निर्वाह करना चाहिये। इनमें से सबसे पहला कर्तव्य है, प्रशंसा। उसके भोजन, और शृंगार की प्रशंसा कीजिये और प्रशंसा की आँखों से ही उसे देखिये। इससे उसको बड़ी पुलक और सुख की सिरहन प्राप्त होती है। उसे यह विश्वास रहता है कि पति को मैं और मेरे काम पसन्द है। यह पसन्दगी की भावना हर नारी की एक साथ होती है। इस पर वह अपना आराम और सुख-सुविधा तक निछावर करने को तैयार रहती है।

पत्नी के सेवा करते समय कभी भी उदास व उदासीन मत रहिये। उसस हँसते-मुस्कराते और एकाग्र होकर बात करने का प्रयत्न करिये। इससे उसको यह बड़ा सन्तोष रहता है कि पति उसको देखकर खिल उठता है, मेरी साधारण सी बात में भी उसे रस आता है और शीघ्र ही मुझमें खो जाता है। वह इसे नारीत्व की विजय समझती है और नारी होने का अभिमान करने लगती है, जिनको प्रेम रूप में वह आभारस्वरूप समर्पित कर देती है। बाज़ार से जब भी आइये कुछ-न-कुछ उसकी पसन्द की वस्तु अवश्य लेकर आइये। स्त्रियों का स्वभाव भी कुछ बच्चों जैसा होता है, अपनी पसन्द की छोटी-सी वस्तु भी पाकर बहुत अधिक प्रसन्न हो जाती है। यह और इस प्रकार के अन्य बाह्य और मनोवैज्ञानिक कर्तव्यों का पालन करने वाले पतियों की पत्नियाँ सदा प्रसन्न रहती हैं और किसी भी स्थिति में गृह-कलह उपस्थित नहीं कर पाती हैं।

परन्तु, नियम है कि ताली एक हाथ से कभी नहीं बजती। आदान के अभाव में प्रदान सम्भव नहीं होता। पति के साथ पत्नी को भी ऐसे कारण उपस्थित नहीं करना चाहिये, जिससे पति का उसकी ओर से मन फिरने की सम्भावना हो जाये। सबसे पहले तो उसे पति की उचित सेवा में न तो प्रमाद करना चाहिये और न अरुचि ही। पति को जो कुछ पसन्द है, खाने की वस्तुओं में उनका समावेश करते रहना चाहिये। दिन भर के परिश्रम के बाद रुचिकर भोजन और पत्नी की आवभगत उसको पूरी तरह ताजा कर देने के लिए पर्याप्त है—पति के आने पर जो पत्नियाँ उसकी सेवा-स्वागत भूल कर अपनी गाथा लेकर बैठ जाती हैं या तत्काल बाजार का काम बतलाने लगती है, वे उसकी अनुकूलता कभी प्राप्त नहीं कर सकती।

खरीद-फरोख्त के समय पति की आवश्यकताओं को प्राथमिकता दीजिये और सदैव यह ध्यान रखना चाहिये कि उसके कपड़े ज्यादा पुराने, फटे अथवा कम नहीं होने चाहियें। खाने-पीने की वस्तुओं में प्रयत्न करिए कि पति को अधिक न सही पुरुषोचित भाग तो मिलना ही चाहिये। पौष्टिक पदार्थों के उपयोग में पति की बराबरी करने का प्रयत्न न कीजिये और न अपने ऊपर इस स्पर्धा से अधिक खर्च करिये कि जब वह इतना व्यय करते हैं तो मैं क्यों न करूँ। अपने वस्त्रों का स्तर यथा-सम्भव उतना ही रखिये जितना कि पति का हो।

पति की आर्थिक कमी अथवा कम कमाई की आलोचना तो कभी करनी ही नहीं चाहिये। जहाँ तक संभव हो ऐसी व्यवस्था रखिये कि उसका आभास कम-से-कम ही हो। पति की आर्थिक आलोचना करने का अर्थ है उसका मन अपनी ओर से विमुख कर देना। बाजार अथवा बाहर जाते समय अपनी फरमाइश की सूची पेश करने और आने पर उनके लिए तलाशी लेने लगने का स्वभाव पति को रुष्ट कर देने वाला होता है। पति के प्रिय मित्रों की अनुचित आलोचना करना अथवा उनका सम्बन्ध विच्छेद कराने का प्रयत्न करना पति के एक सुन्दर सुख को छीन लेने के बराबर है। पति के मित्रों को स्वजन और शत्रु को शत्रु मानना पत्नी का प्रमुख कर्त्तव्य है। जो पत्नियाँ अपना स्वतन्त्र अस्तित्व मान कर केवल अपने मित्र को मित्र और अपने विरोधी को विरोधी मानती हैं, वे अपने दोनों के बीच खाई खोदने की भूल करती हैं।

इसके अतिरिक्त संकट के समय में भी पति के पास मुस्काती हुई ही रहे। पति के सम्मुख गंदी दशा में रहने वाली स्त्रियाँ अपने प्रति घृणा को जन्म देती हैं। अनेकों स्त्रियों का स्वभाव होता है कि पति के पीदे तो वह खूब सजी-धजी रहती हैं, बाहर सज-धज कर निकलती हैं लेकिन घर में खासतौर से पति के सम्मुख गन्दा व पुराना कपड़ा पहन कर आती हैं। उनका ख़्याल रहता है कि पति उनके पास कमी समझ कर और नई साड़ियाँ लाकर देगा। परन्तु यह प्रयत्न उलटा है। इससे पति उसे स्वभाव से गंदा समझ कर कपड़े लाकर देना बेकार समझते हैं। सदा मधु और मृदुल बोलिये। नारियों की

मीठी वाणी और अनुकूल मुस्कान का जादू पुरुष पर अधिकार जमा लेता है। यदि इस प्रकार पति-पत्नी एक दूसरे की भावनाओं का ध्यान रखते हुए अपने यह कतिपय बाह्य और मनोवैज्ञानिक कर्तव्यों का पालन करते रहें तो उनके बीच कलह-क्लेश होने की संभावना ही न रहे और दाम्पत्य-जीवन का अधिक से अधिक आनन्द पा सकते हैं।

11. गृहस्थाश्रम की सार्थकता

'धन्यो गृहस्थाश्रम' यह गृहस्थाश्रम धन्य है लेकिन ऐसी धन्यता सरलता से प्राप्त नहीं होती। यह प्रयत्न-साध्य है। कष्टसाध्य है। गृहस्थाश्रम में पति-पत्नी के शरीर सुन्दर और निरोग होने चाहिये। इस प्रकार उनके मन भी निरोग होने चाहियें। पति-पत्नी को एक दूसरे के साथ निष्ठापूर्वक व्यवहार करना चाहिये। जिस विवाह विधि से पति-पत्नी का सम्बन्ध स्थिर हुआ है, उस विवाह विधि के कुछ मंत्र बड़े सुन्दर हैं। सगाई के समय ब्राह्मण कहता है। विवाह सूक्तों में वधु को अघोरचक्षु व शिवा, सुमन व तेजस्वी, वीरप्रसू, श्रद्धालु आदि विशेषण लगाये गये हैं। 'अघोर चक्षु' का विशेष वर और वधू दोनों को ध्यान में रखने योग्य है। एक की दूसरे पर प्रेमपूर्ण दृष्टि हो वह भयावह एवं क्रूर न हो।

विवाह का मतलब केवल बाध्य विवाह नहीं है। हृदय का विवाह, मन का विवाह, वर का वधू के गले में माला डालना मानो एक-दूसरे के हृदय पुष्प एक दूसरे को अर्पण करना है। अग्नि के चारों ओर सात कदम चलना मानो जीवनभर साथ-साथ चलना है। विवाह के लिए लड़की के शरीर का रंग देखा जाता है। उसकी बुद्धि और हृदय के वर्ण, उसकी अन्तरात्मा के वर्ण की ओर किसी का ध्यान नहीं जाता। अतः आज सारे विवाह अशास्त्रीय एवं अधार्मिक है। जिस विवाह में स्त्री-पुरुष के हृदय व बुद्धि का वर्ण देखा जायेगा, उसके शरीर की निरोगिता देखी जायेगी वही सच्चा शास्त्रीय विवाह होगा।

आज पंचांग से जाना जाता है कि किसी का राक्षस गण है या देवगण।

लेकिन किसी का राक्षसगण है या देवगण यह भी क्या पंचांग से मालूम हो सकता है। जो अपने लिये जमा करता है वह राक्षस है और जो दूसरों को देता है, वह देव है। वर्ण की पहचान तो कर्म से होती है पंचांग से नहीं। स्त्री पुरुष का पारस्परिक सम्बन्ध प्रेम का होना चाहिये। स्त्री कोई सम्पत्ति नहीं है। उसके हृदय है, बुद्धि है, भावना है स्वाभिमान है, आत्मा है। सुख-दुःख हैं यह बात पुरुषों को मालूम होनी चाहिये। स्त्री संसार में महान् शक्ति है। महर्षि दयानन्द सरस्वती ने स्त्री को जगत्जननी कहा है। इस शक्ति के साथ व्यवहार करने वाले पुरुष को शिव बनना चाहिये। शिव और शक्ति के प्रेममय किन्तु संयममय संबंध से ही कर्मवीर कुमारों का जन्म होता है। शूरता-धीरता के सागर, विद्या आगर सुपुत्रों का जन्म होता है।

स्त्री-पुरुषों के संबंध में बालकों का जन्म होगा। एक बच्चे को जन्म देना मानो एक देवता की मूर्ति का निर्माण करना है। क्या हम इस देवता का ठीक तरह साज-संभाल कर सकेंगे? क्या ठीक तरह हम उसका पालन-पोषण कर सकेंगे। क्या इसके वर्ण का ठीक तरह विकास कर सकेंगे? माता-पिता को इन बातों का विचार कर ही लेना चाहिये। नहीं तो घर में बहुत से चिड़चिड़े और रोगी बच्चे दिखाई देंगे। उन्हें न शिक्षा मिलेगी, न संरक्षण। इनसे जीवन सुखमय कैसे होगा और वह समाज भी तेजस्वी कैसे होगा? उस समाज का धारण कैसे होगा। पति-पत्नी सुख-दुःख में साथ रहेंगे, साथ चढ़ेंगे, साथ गिरेंगे उनके आस-पास सूत लपेटा जाता हैं अब पति-पत्नी का जीवन-पट एक साथ बुना जायेगा। अब ताना-बाना एक ही जायेगा। अब कुछ भी पृथक् नहीं है। कुछ भी अलग नहीं है।

शरीर पर प्रेम करने से सच्चा प्रेम नहीं होता। यदि कल शरीर रोग से कुरूप हो जाये। हम शरीर से आरम्भ करें लेकिन बनें देहातीत। देह के अन्दर की आत्मा को पहचानकर उससे भेंट करना चाहिये। व्यक्ति आंगन से घर के प्रथम भाग में आता है। मध्य भाग फिर देव घर में जाता है। इस प्रकार वर-वधू को एक दूसरे के हृदय के क्षेत्र में जाना चाहिये। उन्हें यह अनुभव होना चाहिए कि केवल हमारे शरीर ही नहीं है। पूजा करने वाला पति हमारा अपमान करता है। हमारा कोई मिट्टी का शरीर नहीं है। पति-पत्नी एक

दूसरे को मिट्टी का मांस का गोला न समझें। धीरे-धीरे इस मिट्टी में जो उदारता है।

दीपक के काँच का महत्त्व अन्दर की लौ के कारण है। हमें उस ज्योति की उपासना करनी चाहिये। जब तक आत्मा की महानता समझ नहीं आती, तब तब सच्चा प्रेम नहीं है। पत्नी की आत्मा की महानता दिखाई देते ही पति उसे ज्ञान देता है। ध्येय देगा वह उसके केवल वस्त्रालंकारों द्वारा गुड़िया जैसी सजाता नहीं रहेगा, इसी प्रकार जिस दिन पत्नी को दिव्यता दिखाई देगी उस दिन वह पति को चाहे जैसे आचरण नहीं करने देगी। चाहे जिस तरह से पैसे प्राप्त करने का काम नहीं करने देगी।

इस प्रकार गृहस्थाश्रम में पवित्रता लानी चाहिये। पति-पत्नी एक-दूसरे को सावधान करके एक-दूसरे को प्रेम और कभी क्रोध से सदा आगे बढ़ाते रहो। आसक्तिमय प्रेम से अन्त अनासक्त प्रेम का निर्माण करना चाहिए। कीचड़ में कमल खिलाना चाहिए। संसार में मोक्ष की शोभा प्राप्त करनी चाहिए।

भारतीय संस्कृति में गृहस्थाश्रम मोक्ष की ओर जाने का एक मार्ग है। यह एक सीढी है। यहाँ सदा नहीं रहना है। पति-पत्नी को यह बात न भूलनी चाहिए कि गृहस्थाश्रम में रहकर संतति पैदा करके वासना-विकार शांत करके अनेक प्रकार के पाठ सीखते-सीखते अन्त में छोटे संसार में एक दिन बड़े संसार में जाना है। गृहस्थाश्रम भी एक आश्रम है। इसमें भी आश्रम जैसी ही पवित्रता रहनी चाहिये। यह पति पत्नी और बच्चों का आश्रम है। सबको एक-दूसरे के साथ सहयोग करना चाहिये।

उन कुल-परम्पराओं के लिए यदि सर्वस्व का भी त्याग करना पड़े, तो वह करना चाहिये। हरिश्चन्द्र ने सर्वस्व त्याग कर दिया है। हरिश्चन्द्र के निकलते ही तारा उसके पीछे-पीछे चल दी थी। हरिश्चन्द्र और तारा के पीछे छोटा सा रोहिताश्व भी भागता हुआ जाता था। माता-पिता उस रोहिताश्व को मना नहीं करते थे। वे यह नहीं कहते थे कि—तू छोटा है। क्यों आता है

अपनी ही शिक्षा से और अपने उदाहरण से बच्चों को ध्येय पूजा सिखानी थी। आज इस प्रकार का गृहस्थाश्रम कहाँ है। सब एक ध्येय की पूजा नहीं करते। हाँ यदि ध्येय ही विचित्र हो तो दूसरी बात हैं लेकिन जब आसक्ति और भय मार्ग में आते हैं तो अवश्य बुरी बात है।

पत्नी ज्वार की रोटी बनाकर देती है लेकिन पति उसे विचार की कौन-सी रोटी देता है? पति के दिमाग़ में तो यह विचार ही नहीं आता कि उसकी पत्नी का भी मन है, बुद्धि है, हृदय है। इसी से वह विश्व की बातों की चर्चा घर में नहीं करता फिर बच्चों को वे बातें कैसे मालूम होंगी? जहाँ पत्नी ही विचारों के अज्ञान में है, वहाँ बच्चे भी अज्ञान में ही बड़े होंगे।

भारतीय संस्कृति में इस प्रकार का गृहस्थाश्रम नहीं होता। बकासुर के पास जाने की बारी जिस ब्राह्मण की आई उसके घर के एक-एक व्यक्ति मरने के लिए तैयार था। पति कहता है—मुझे मरने दो। पत्नी कहती है—मुझे मरने दो। लड़की कहती है—मुझे मरने दो। लड़का कहता है—मुझे मरने दो। इसका नाम है गृहस्थाश्रम और इसी का नाम है कुटुम्ब। रानी एक विचार से प्रेरित है—एक ही ध्येय एक ही पूजा होती है।

गृहस्थाश्रम संयम की पाठशाला है। गृहस्थाश्रम तपस्या है। हम अपनी सैकड़ों वृत्तियों का निरोध करने की शिक्षा गृहस्थाश्रम में प्राप्त करते ही हैं। बच्चे बीमार हो जाते हैं तो उनकी सेवा-सुश्रूषा करनी पड़ती है। बच्चों की इच्छानुसार काम करना पड़ता है। पद-पद पर क्रोध करने से काम थोड़े ही चल सकता है। गृहस्थाश्रम में हम त्याग का पाठ सीखते हैं। पति पत्नी को सर्वस्व अर्पणकर देना चाहता है। पत्नी,पति को सुखी बनाना चाहती है। माता-पिता फटे कपड़े पहन कर पहले बच्चों को सजाते हैं। दूसरों को सुखी दिखाना, दूसरे के आनन्द में आनन्द मनाना यही गृहस्थाश्रम की शिक्षा है।

बच्चे अच्छे बनाने के लिए ही माता-पिता को स्वयं को अच्छा बनाना पड़ता है। आचार और व्यवहार में अच्छा रहना होता है। जो माता-पिता चाहते हैं कि उनके बच्चे अच्छे हों, उन्हें अत्यन्त जागरूकता रखनी चाहिये।

यदि बच्चे अपने माता-पिता के रात-दिन माता-पिता के झगड़े देखते रहे तो उनके जीवन पर कितना बुरा प्रभाव होगा। जब आलसी और विलासी माता-पिता सामने होंगे तो बच्चे भी सज-धज प्रिय बन जायेंगे।

माता-पिता को यह देखना चाहिये कि उनके बच्चे शारीरिक दृष्टि से बलवान् हृदय से विशुद्ध और उदार, बुद्धि से विशाल और निर्मल हों। हम जिस हाल में रह रहे हैं उसका हाल बच्चों को भी बताना चाहिए। भोजन करते हुए हँसते-खेलते हुए बच्चों को भी बताना चाहिये। इतिहास का सारा ज्ञान। गृहस्थाश्रम में संयम, त्याग और वासना-विकार को सीमित करने तथा प्रेम और सहयोगादि गुणों की शिक्षा मिलती है। हम थोड़े-थोड़े पकने लगते हैं। उच्छृंखलपन कम होता है और प्रौढ़ता आती है। हमें जीवन का बहुत-सा अनुभव प्राप्त होता है। खट्टापन नष्ट होकर जीवन की मधुरता आती है।

अब तक हमने एक सीमित परिवार-सेवा की। उस सीमित परिवार में हमने जो सेवा का गुण सीखा उसे अब समाज को देना चाहिए। अपने परिवार के बाहर आकर अब हमें समाज को ही अपना परिवार समझना चाहिए—अधिक अनासक्त होना चाहिये। अधिक व्यापक होना चाहिये। अधिक उदार होना चाहिये। हमें अपनी आत्मा का राज्य बढ़ाना चाहिये।

वानप्रस्थ का अर्थ है—वन को निकला हुआ, भवनों को छोड़कर वन के लिये निकला हुआ। ये वानप्रस्थी वन में रहते हैं, वहाँ आश्रम चलते हैं, स्कूल चलाते हैं। वानप्रस्थ के बराबर कोई उत्कृष्ट शिक्षक नहीं है। शिक्षक अनुभवी, प्रौढ़, शान्तकाम, हँसते-खेलते शिक्षा दे देने वाला होना चाहिये और वानप्रस्थ को कुछ विशेष आवश्यकता तो रहती भी नहीं, उसे तो पेट भर भोजन मिल जाये तो बहुत है।

आज हजारों पेंशनर देश में हैं। यदि सच कहा जाए तो उनको इधर-उधर स्कूल खोलने चाहिये। यदि ऐसा हुआ तो दस वर्ष में शिक्षा सर्वत्र पहुँच जायेगी। लेकिन भारतीय संस्कृति के गुणगान गाते हुए शांत स्थान में बंगला बनाकर वे अपने नाती-पोतों को खिलाते रहते हैं। उन्हें तो सबके नाती

पोतों को खिलाना चाहिये। उनके लिए सुन्दर आश्रम की स्थापना करनी चाहिये। सच्चे अर्थ में आज समाज में कोई भी वानप्रस्थ नहीं है। वानप्रस्थ वही है जो परिवार की मर्यादिक आसक्ति छोड़कर समाज की सेवा करने लगे।

12. व्यभिचार से दूर रहो

स्त्री-पुरुषों की जननेन्द्रियाँ शरीर के अन्य समस्त अंगों की अपेक्षा अधिक चैतन्य, सजीव, कोमल, सूक्ष्म प्राण विद्युत् से युक्त होते हैं। मानव शरीर के सूक्ष्म तत्त्वों को जानने वाले बताते हैं कि स्त्री में ऋण (निगेटिव) और पुरुष में धन (पाजटिव) विद्युत् का भण्डार होता है। दर्श स्पर्श से भी यह विद्युत् स्त्री-पुरुषों में एक विचित्र कम्पन उत्पन्न करती रहती है। परन्तु शरीर के सजीवतम प्राण केन्द्र गुह्य स्थानों का जब दोनों एकीकरण करते हैं, तब तो एक शरीरव्यापी तूफान उत्पन्न हो जाता है। दोनों के शरीर के विद्युत् परिमाण दोनों के अन्दर अत्यन्त वेग और आवेश के साथ प्रवेश करते हैं और दोनों में एक शक्तिशाली अंतरंग संबंध—प्रेम उत्पन्न करते हैं। एक दूसरे के सूक्ष्म तत्त्वों का एक-दूसरे में बड़ी तीव्र गति से प्रचुर परिमाण में आदान-प्रदान होता है। यही कारण है कि जिन स्त्री-पुरुषों में यौन सम्बन्ध स्थापित हो जाता है वे एक दूसरे के ऊपर आसक्त हो जाते हैं, उनके बीच एक ऐसा आकर्षण और सामंजस्य स्थापित हो जाता है, जिसे हटाना असाधारण रूप से कठिन होता हैं पाँव दाबना, सिर मसलना जैसी शारीरिक सेवाओं में ऐसी कोई हलचल नहीं होती किन्तु यौन सम्बन्ध से दो व्यक्तियों के सूक्ष्म प्राण तत्त्वों में आवेश पूर्ण आदान-प्रदान होता है। इसलिए शरीर सेवा और यौन सम्बन्ध को समान नहीं कहा जा सकता।

पतिव्रत और पत्नीव्रत का समर्थन शास्त्र ने इसी वैज्ञानिक आधार पर किया है। एक पुरुष का एक स्त्री से सम्पर्क होने पर उन दोनों में प्रेम भाव बढ़ता है। एक की शक्ति निश्चित मार्ग से दूसरे को प्राप्त होती है। गुण, कर्म,

स्वभाव की दृष्टि से एक दूसरे के निकट आते हैं और एक प्राण दो शरीर बन जाते हैं । यौन संबंध के द्वारा दोनों के रक्त में सजीव संमिश्रण होता है, किसी बीमारी में किसी रोगी को रक्त का इंजेकशन देना होता है तो डॉक्टरलोग पति-पत्नी के जोड़े में से ही रक्त लेने का महत्त्व देते हैं । क्योंकि दम्पत्ति के रक्त में सहवास के कारण एक समान तत्त्व उत्पन्न हो जाते हैं ।

पति-पत्नी के बीच सच्चा प्रेम, वफादारी, सेवा, आत्मीयता, विश्वास तभी रह सकता है, जब उनमें 'एकनिष्ठा' का व्रत हो । यदि कोई स्त्री अनेक पुरुषों से या कोई पुरुष अनेक स्त्रियों से गुप्त संबंध स्थापित करता है तो उसके शरीर में, रक्त में, मन में, मस्तिष्क में अनेकों तत्त्व मिल जाने के कारण अस्थिरता, खींचतान, आकर्षण-विकर्षण के दौर चलने लगते हैं । ऐसी अवस्था में सच्चा प्रेम, वफादारी एवं आत्मीयता असम्भव है । व्यभिचारी स्त्री-पुरुषों का दाम्पत्य जीवन कपट, धूर्तताा, मायाचार और छल से भरा हुआ होता है । वे अवसर पड़ने पर अपने साथी को धोखा दे सकते हैं ।

व्यभिचार, चोरी, भय, लज्जा और पाप की झिझक के साथ किया जाता है, उसे छिपाने का प्रयत्न किया जाता है । उपयुक्त अवसर ढूँढने के प्रपंच उनके मन में उठा करते हैं । ये पापवृत्तियाँ कुछ समय लगातार अभ्यास में आते रहने पर व्यक्ति के मन में वे गहरी उतर जाती हैं और जड़ जमा लेती हैं । फिर उसके स्वभाव में वे बातें शामिल हो जाती हैं और जीवन के विविध क्षेत्रों में वे प्रकटित होती रहती हैं यही कारण है कि व्यभिचारी व्यक्ति अक्सर चोर, निर्लज्ज, दुस्साहसी, कायर, झूठे और ठग होते हैं । वे अपने व्यापार तथा व्यवहार में समय-समय पर अपनी इन प्रवृत्तियों का परिचय देते रहते हैं । उनका विश्वास उठ जाता है, लोगों के मन में उनके लिए प्रतिष्ठा तथा आदर की भावना नहीं रहती, सच्चा सहयोग भी नहीं मिलता, फलस्वरूप जीवन विकास के महत्त्वपूर्ण मार्ग बंद हो जाते हैं । पापवृत्तियों के मन में जम जाने से अन्तःकरण कलुषित होता है । प्रतिष्ठा एवं विश्वस्तता नष्ट होती है और हर क्षेत्र में सच्ची मैत्री भावना का अभाव मिलता है । यह तीनों ही बातें नरक की दारुण यातना के समान हैं, व्यभिचारी को अपने कुकर्म का

दुष्परिणाम इसी जीवन में उपयुक्त तीन प्रकार से नित्य ही भुगतना पड़ता है ।

स्त्री पुरुषों के सम्मिलन से एक का प्रभाव दूसरे पर जाता है । एक के दुर्गुण दूसरे में प्रवेश हुए बिना नहीं रहते । काम भोग करने के साथ दूसरा पक्ष अपनी कुवासनाओं की छाप भी छोड़ता है यह परत दिन पर दिन मजबूत होते जाते हैं और वह दिन-दिन अधिक दुर्गुणी बनता जाता है । व्यभिचार स्त्री और पुरुष दोनों के लिए घातक है, परन्तु स्त्रियों के लिए विशेष रूप से घातक है । कारण यह है कि स्त्रियाँ अपने शरीर के सबसे सूक्ष्म, चेतन एवं प्राण युक्त स्थान गुह्येन्द्रियाँ में पुरुष का वीर्य ग्रहण करती हैं । वीर्य पानी की बूंद नहीं है । वरन् पुरुष के शरीर और मन का सारभूत प्राणसत्व है । उसकी एक-एक बूंद में व्यक्ति उत्पन्न करने की प्रचण्ड शक्ति भरी हुई है । उस प्रचंड, शक्तिशाली प्राणसत्व के साथ पुरुष की गुह्य और प्रकट शक्तियाँ केन्द्रीभूत होती हैं । इस द्रव प्राणसत्व को योनि मार्ग में धारण करना ऐसा ही है मानो किसी के गुण-अवगुणों के सार भाग का इंजेक्शन लेना । यह निश्चित् है कि पापी और पतित स्वभाव के व्यक्ति ही व्यभिचारी होते हैं, उनका पाप एवं पतन प्राणसत्व वीर्य के साथ स्त्री के आत्मिक क्षेत्र में व्याप्त हो जाता है और उसमें भी यह दुर्गुण भर देता है ।

कितने ही व्यभिचारी पुरुषों के संयोग से उनके अनेकों प्रकार के दोषों को अपने सूक्ष्म शरीर में संचित कर लेने से स्त्री की निर्बल अन्तःचेतना बहुत ही विकृत हो जाती है । एक म्यान में अनेकों तलवारें ठूंसने से भयंकर स्थिति उत्पन्न होती है । वैसे ही एक स्त्री के शरीर में नाना प्रकार के गुण, कर्म, स्वभाव एवं प्रभाव प्रवेश कर जाते हैं तो वे आपस में टकराते हैं उसका प्रभाव मनोभूमि को विकृत कर देता है । व्यभिचारिणी स्त्रियाँ सीधे स्वभाव की नहीं रहतीं, उनमें चिड़चिड़ापन, झुंझलाहट, घबराहट, आवेश, अस्थिरता, रूठना, असत्य, छल, अतृप्ति आदि दुर्गुणों की मात्रा बढ़ जाती है, सिर दर्द, कब्ज़, दर्द, खुश्की, प्यास, अनिद्रा, थकावट, दुःस्वप्न, दुर्गन्धि आदि शारीरिक विकार भी बढ़ने लगते हैं । एक शरीर में अनेकों पुरुषों के प्राण का स्थापित होना, इस प्रकार के अनेकों दुःखदायी परिणाम उपस्थित करता है । वेश्यावृत्ति करने

वाली स्त्रियों का सान्निध्य ऐसा अनिष्टकर होता है कि पुरुष को बड़े तीव्र झटके के साथ नारकीय यातनाओं के कुण्ड में धकेल देता है ।

कई प्रकार के वीर्यों को एक स्थान पर एकत्रित होने से विषैले रसायनिक पदार्थों का निर्माण होता है । जैसे घी और शहद अमुक मात्रा में मिला देने से हानिकारक रसायन बन जाती है वैसे ही अनेक व्यक्तियों के शुक्र, कीट योनि मार्ग में एकत्रित होकर विष बन जाता है, यह विष सुजाक, आतिशक जैसे योनि रोग उत्पन्न करता है । वे रोग जब बढ़ते हैं तो उस स्त्री के सम्पर्क में आने वाले पुरुषों को लगते हैं । पुरुषों की छूत अन्य स्त्रियों को लगती हैं, इस प्रकार व्यभिचार के कारण ये सत्यानाशी रोग उत्पन्न होते और फैलते हैं । जिसके पीछे यह रोग लग जाते हैं, उसका पीछा मुश्किल से छूटता है । यह रोग सड़ा-सड़ा कर और रुला-रुला कर रोगी को मारते हैं । व्यभिचारिणी स्त्रियों का गर्भाश्य दूषित हो जाने के कारण या तो उनके सन्तान होती ही नहीं, होती भी है तो पैतृक रोगों को लेकर आती है ।

माता-पिता की पापमयी मनोवृत्तियों का प्रभाव सन्तान पर निश्चित् रूप से होता है । उस सन्तान में अनेक आसुरी दुर्गुण पाये जाते हैं । व्यभिचार से उत्पन्न हुई सन्तान को 'वर्ण शंकर' के अपमानजनक, घृणास्पद नाम से शास्त्रकारों ने पुकारा है । कारण यह है कि उस सन्तान में माता-पिता की प्रवृत्तियाँ सन्निहित रहती ही हैं । ऐसे बालकों की अभिवृद्धि होना संसार के लिए अभिशाप रूप है । इसलिए व्यभिचार सर्वथा निन्दनीय है । धर्म की दृष्टि से तो स्त्री और पुरुष दोनों के लिए वह एक समान पाप है परन्तु शारीरिक दृष्टि से स्त्रियों के लिए वह और भी बुरा है । क्योंकि स्त्रियों के गुह्य अंग में पुरुष के वीर्य की स्थापना होती है, इससे उनके ऊपर अनेक प्रकार के शारीरिक और मानसिक प्रभाव विशेष रूप से होते हैं । पुरुष-स्त्री के रज को धारण नहीं करता इसलिए किन्हीं अंशों में उसे शारीरिक हानि कुछ कम होती है ।

यदि पति-पत्नी में एक निष्ठा न हो, वे व्यभिचार में प्रवृत्त हो तो घर की आर्थिक दशा ठीक नहीं रह सकती । दोनों का ध्यान अपने तुच्छ स्वार्थ में

केन्द्रित रहेगा। यदि पति व्यभिचारी हो तो दूसरी स्त्री को धन देकर अपने आश्रितों को अर्थहीन बनावेगा। यदि स्त्री व्यभिचारिणी हो तो कभी जार पति की आवश्यकता होने पर घर का धन गुप्त रूप से उसे दे देगी। यदि जार पति से लेगी तो उसे गुप्त रूप से रखेगी या फैशन आदि में अपव्यय करेगी। व्यभिचार से प्राप्त हुआ धन मुफ्त सा लगता है वह बुरी तरह फिजूलखर्ची में जाता है। वेश्याएं इतना धन कमाती हैं परन्तु यौवन ढलने पर दूसरों की मुहताज होकर रोटी खाती हैं। उनके पास जमा कुछ नहीं हो पाता। फिजूलखर्ची की आदत यदि स्त्री या पुरुष एक को भी हो तो घर की आर्थिक व्यवस्था ठीक नहीं रह सकती। वहाँ दरिद्रता और अभाव का ही सदा बोलबाला रहेगा। पति-पत्नी की एकनिष्ठा और आत्मीयता होने पर थोड़ी आय में सावधानी बरतने से अधिक कठिनाई नहीं आती, परन्तु दोनों के बीच कपट होने पर अच्छी आमदनी होते हुए भी अर्थ संकट बना रहता है।

व्यभिचारी व्यक्तियों को अपने प्रेमी को स्वेच्छापूर्वक प्राप्त करने की सुविधा नहीं होती, जब अवसर भी मिलता है तो थोड़े समय के लिए। वह भी आशंका, भय और झिझक के साथ। ऐसी स्थिति में तृप्तिदायक संयोग सुख, किसी भी प्रकार नहीं मिल सकता। दम्पत्ति सुख की यह चिन्ह पूजा दोनों में से किसी को तृप्ति नहीं दे पाती। मनोविज्ञान शास्त्र के अनुसार यह प्रकट है कि—अतृप्त संयोग मस्तिष्क सम्बन्धी विकार और मानसिक दुर्गुण उत्पन्न करता है। इच्छित तृप्ति की सुविधा न होने से व्यभिचारी व्यक्ति अपने प्रिय पात्र के लिए आतुर रहते हैं, जी की जलन बुझाने और प्रेमी को आकर्षित रखने के लिए उसकी समीपता प्राप्त करने का प्रयत्न करते हैं।

इस प्रकार की चेष्टाओं में उनका सारा ध्यान उलझा रहता है। हर घड़ी वही फितूर सवार रहता है, समय का अधिकांश भाग उन्हीं बातों में खर्च हो जाता है। फलस्वरूप जीवन के अन्य महत्त्वपूर्ण काम बिगड़ते हैं, अधूरे पड़े रहते हैं, छूट जाते हैं। इस मानसिक उद्वेग में शरीर दिन-रात घुलता जाता है। ऐसे लोग बीमारी और कमजोरी से ग्रसित होकर अल्पायु में मर जाते हैं असंयम के कारण अधिक वीर्यपात होता है, इस प्राण सत्व के अधिक नष्ट

होने के कारण अनेकों नवयुवक तपेदिक के शिकार होकर जीवन लीला समाप्त करते देखे गये हैं ।

एकनिष्ठा का बंधन शिथिल हो जाने से समाज का संगठन बिल्कुल नष्ट-भ्रष्ट हो जायेगा । स्त्री, बच्चे, माता-पिता आदि के सम्बन्ध एक क्षणिक ठेकेदारी मात्रा रह जावेंगे । स्वस्थता, सुन्दरता, स्वभाव या धन की अधिक मात्रा का जहाँ अवसर मिलेगा, वहाँ पहले संबंध को छोड़कर लोग दूसरे नये संबंध की स्थापना किया करेंगे । तब किसी भी स्त्री-पुरुष को अपने साथी पर विश्वास न रहेगा । सदा यही भय लगा रहेगा कि अधिक अच्छा अवसर मिला कि साथी पल्ला छोड़ कर भागा । ऐसी आशंका के बीच किसी सुदृढ़ परिवार की स्थापना किस प्रकार हो सकती है? सुदृढ़ परिवार की, आधारशिला स्त्री-पुरुष के बीच सच्ची मित्रता, एकता और आत्मीयता ही है और वह तभी हो सकती है जब एक-दूसरे के प्रति वफादार हो, उसके लिए कुछ त्याग करे ।

इस त्याग और वफादारी की प्राथमिक परीक्षा एकनिष्ठा, व्यभिचार से बचना ही है। जहाँ एकनिष्ठा न होगी—उन पति-पत्नी के बीच सच्ची आत्मीयता को होना असंभव है । अस्थिर, सशंकित और प्रेमरहित परिवारों का समाज संसार के सारे सौन्दर्य का और मानव जाति की महत्ता का नाश ही कर देगा । यदि व्यभिचार पर प्रतिबन्ध न होगा तो एक व्यक्ति दूसरे के और दूसरा तीसरे के घर को ताकेगा और सर्वत्र अशान्ति, अस्थिरता एवं अविश्वास का वातावरण व्याप्त हो जायेगा । स्त्री या पुरुष किसी को सच्चा साथी न मिल सकेगा ।

इन सब बातों पर विचार करने से पतिव्रत और पत्नीव्रत की महत्ता स्पष्ट हो जाती हैं । कामसेवन एक मनोरंजन खेल मात्र नहीं है । यह प्राण विनिमय की वैज्ञानिक प्रक्रिया है । यह वह महान् रासायनिक क्रिया है जिसके द्वारा दो प्राणों का एकीकरण होता है और उस संयोग से नये प्राणों की बालकों की उत्पत्ति होती है । भावी संतति की पवित्रता, सार्वजनिक स्वास्थ्य, समाज की स्थिरता, परिवार की निश्चिन्तता आदि जीवन की महत्त्वपूर्ण समस्याओं का सदाचार से अत्यन्त घनिष्ट संबंध है । इसमें शिथिलता आते ही इतनी

दुःखदायी उलझनें उत्पन्न हो जाती है, जिनके सामने कामसेवन का इन्द्रिय सुख बिल्कुल उपेक्षणीय है । व्यक्ति समाज का सामूहिकत हित जिन कामों में निहित है, वे धर्म हैं, जिन कार्यों से सामूहिक अहित होता है, वे पाप हैं । चूंकि व्यभिचार से मानव जाति की सामूहिक हानि है इसलिए तयाज्य है एवं अधर्म है । पाठकों को व्यभिचार से दूर रहने का प्रयत्न करना चाहिये ।

13. सन्तानोत्पत्ति भारी उत्तरदायित्व

जमाने की हवा जिस दिशा में चल रही है, उसे देखते हुए व्यक्ति का मन यदि जोड़ी बनाकर रहने और कामुकता का रसास्वादन करते रहने के लिए चले तो इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है । मनोरंजनों के माध्यमों में प्रकृति ने जननेन्द्रिय को मुख्य बनाया है । फिर वातावरण, ऐसा बन गया है कि साहित्य, सिनेमा, टेलीविजन, मोबाइल, स्मार्टफोन, इंटरनैट आदि क्षेत्रों में कामुकता का गहरा प्रवेश हो चला है । अश्लील फिल्मों, चित्रों की कानून का बांध तोड़ते हुए बाढ़-सी आ गई है । एकान्त की पारस्परिक चर्चाओं में इसी संदर्भ का बाहुल्य रहता है । ऐसी दशा में संयमशील ब्रह्मचारी जीवन जी सकता किसी शूरवीर और मनोजयी का ही काम है । जो बात कभी सामान्य थी अब वह अपवाद हो गई है । नर-नारी सभी इस तूफान में तिनके पत्तों की तरह उड़ते चले जा रहे हैं ।

ऐसी दशा में गुप्त व्यभिचार या अप्राकृतिक कृत्यों से होने वाली हानि तथा अव्यवस्था, अस्तव्यस्तता से बचने के लिए हमें उन उपायों को अपनाना पड़ेगा जिसमें दुराव-पाखण्ड रचने की अपेक्षा यथार्थता को अपनाया और सामान्य रीति से जिया जा सके । सभी धर्म एवं सम्प्रदायों में उनका नेतृत्व करने वाले पीर-फक़ीरों, सन्त, महन्तों का एक बड़ा वर्ग होता है, जो एकाकी रहने का अविवाहित समय गुजारने का दम्भ रचता है । इनमें से उंगलियों पर गिनने जितने भी ऐसे होते हैं जो मन, वचन, कर्म से वास्तविक ब्रह्मचर्य का पालन करें । शेष उसमें कहीं न कहीं के छिद्र ढूँढ लेते हैं । भेद प्रकट होने पर

निन्दा होती है। चर्चा का विषय बनता है। तब एक घोंसले को खाली करके दूसरे जंगल में दूसरे पेड़ पर दूसरा घोंसला बनाते हैं। ऐसे ही उजड़ते-बिगड़ते खेल चलते रहते हैं और वह प्रसंग गौण हो जाता है जिसके लिए उन्होंने अपने को समर्पित करने की घोषणा की थी।

इस विडम्बना की अपेक्षा यह कहीं अच्छा है कि लोकसेवी, धर्मसेवी, नर-नारी कार्य संलग्न तो उसी निश्चय से रहे, परन्तु अपने साथी तलाश कर लें। प्राचीनकाल के प्रायः सभी ऋषि-मुनि जोड़ियों में रहते थे। कबीर ने तत्कालीन पाखण्ड को उखाड़कर अपनी पत्नी तलाश ली थी। रामकृष्ण परमहंस भी विवाहित थे। देवताओं में से प्रायः शत-प्रतिशत गृहस्थ है। जापान के गांधी, कागाबा ने लोकसेवा का व्रत लिया था, उनकी पत्नी सहेली के रूप में उनके कार्य में निरन्तर हाथ बँटाती रही। जिनमें साहस रहा है। अन्तर और व्यवहार को एकाकार बनाकर जीवनयापन करने की हिम्मत रही है, उन्होंने अपने को विशिष्ट प्रदर्शित करने की अपेक्षा सामान्य रहने में सत्य का निर्वाह अधिक अच्छी तरह होते देखा और जोड़ा बना लिया।

यदि धर्माचार्यों के मन को परखा जाये और परम्परा के आडम्बर को महत्त्वहीन होने का तथ्य समझाया जाये तो अपने जैसी आयु तथा भावना वाले साथी आसानी से ढूँढ सकते हैं और अपेक्षाकृत अधिक अच्छा और अधिक मात्रा में काम कर सकते हैं। सिख धर्म में गुरुओं की परम्परा के साथ गृहस्थ जीवन जुड़ा रहा है। अच्छा हो अन्य वर्गों के संत भी इसी रीति-नीति को अपनायें और निरर्थक आडम्बर को उतार फेंके। 'संभोग से समाधि' की संरचना करने की अपेक्षा यह कहीं अच्छा है कि साथी, सेक्रेटरी आदि जो भी नाम रखे पर दाम्पत्य व्यवस्था बनाकर उन लाभों से लाभान्वित हो जो एक सद्गृहस्थ को सुख-दुःख में साथ देने वाले मित्र के रूप में मिलते हैं।

कार्य में रुकावट तब पड़ती है जब बाल-बच्चों का उत्तरदायित्व सिर पर आता है और उसे निभाहने के लिए हज़ार प्रपंच रचने पड़ते हैं। अब यह पूर्णतः संभव है कि बिना बच्चों का वैवाहिक जीवन चल सके। मनीषियों, लोकसेवियों, समाजसुधारकों, धर्मोपदेशकों को ऐसे ही विवाह करने चाहिये।

उन्हें ब्रह्मचर्य की परिभाषा बच्चे न उत्पन्न करने के रूप में करनी चाहिये। पत्नी हाथ बँटाती है परन्तु बच्चे जनने के उपरांत वह भी निरर्थक हो जाती है और पति को भी भोंड़े तरह के जंजाल में जकड़ देती है। जिनके सामने कोई उद्देश्य नहीं है उन्हें खाली बैठे रहने की अपेक्षा बच्चे पैदा करने और पालने में लगे रहना भी एक मनोरंजक काम है।

आदर्शवादी उद्देश्यों के लिए लोक-मंगल निरत हल्का-फुल्का जीवनयापन करना ही ब्रह्मचर्य का मूलभूत उद्देश्य है। इसके लिए यदि नर या नारी को अपना साथी चुनने की आवश्यकता अनुभव हो तो फिर इतना उत्तरदायित्व ओढ़ना चाहिये कि साथी की प्रकृति तथा क्षमता के अनुकूल-अनुरूप बनाने के लिए निर्धारण से पूर्व ही समुचित प्रयत्न कर लिया जाये। शोभा या शिक्षा से प्रभावित न होकर यह देखना चाहिये कि आदर्शवादी रीति-नीति के निर्वाह में जिस सादगी, सज्जनता, श्रमशीलता, संतोष भावना की अनिवार्य आवश्यकता पड़ती है, उसके बीजांकुर पहले से ही मौजूद हैं या नहीं। गाड़ी के दोनों पहिये एक लाइन पर चलें तो ही गति बनती है। यदि एक अड़ जाये या उलट जाये तो फिर बात पैदल चलने से भी महंगी पड़ती है। साधारण गृहस्थ जीवन में भी समन्वय और सहयोग की आवश्यकता रहती है फिर आदर्शवादी गतिविधियों में तो कर्त्ताओं को सर्वतोभावेन एकीभूत होना चाहिये। ऐसा विवाह करके सन्तानोत्पादन से बचा रहने वाला विवाह वस्तुतः ब्रह्मचर्य पालन की आवश्यकता ही पूरी करता है।

सन्त परम्परा का ब्रह्मचर्य ऐच्छिक है। उसे बीच में तोड़ा या छोड़ा भी जा सकता है। परन्तु कुछ बाधित ब्रह्मचर्य भी है। उनमें समाज परम्परा एवं परिस्थितियों को ध्यान में रखना पड़ता है। बड़ी आयु के विधुर जिनके कई बच्चे भी हैं, इसी प्रकार कई सन्तानों वाली विधवायें, परित्यक्तायें भी असमंजस की स्थिति में रहती है। उन्हें बच्चों के हित को ध्यान में रखना पड़ता है। प्रथम तो ऐसे जिम्मेदारियों से लदे व्यक्ति के साथ रहने के लिए कोई साथी तैयार ही नहीं होता। दूसरे यदि हो भी जाये और नये साथी से

सन्तानें होने लग जायें तो पिछली और अब की सन्तानों के बीच भेद-भाव चल पड़ता है। पैतृक सम्पत्ति को लेकर बँटवारे के प्रश्न पर कलह खड़ा होता है। यह विग्रह सन्तानों को ही नहीं अपने अभिभावकों को भी लपेट में ले लेता है। जैसे ही वे बड़े होते हैं अभिभावकों से उलझनें लगते हैं और आपस में भी कलह से बढ़कर शत्रुता तक जा पहुँचते हैं। आरम्भ में जिस उत्साह से बच्चों के छोटा समझकर उनके भरण-पोषण के लिए सहायता तलाशने की दृष्टि से विवाह किया था, वह ही कुछ समय उपरांत पश्चाताप का कारण बनता है। गुत्थी सुलझने की अपेक्षा और अधिक उलझ जाती है।

इस प्रकार के विवाह जहाँ करने ही पड़े वहाँ यह पहले से ही निश्चय कर लेने चाहिये कि दूसरे पति या पत्नी से नई सन्तान न पैदा की जायेगी। विधवा और विधुरों के लिए ब्रह्मचर्य पालन की परम्परा है। यदि व्यक्ति साथ-साथ सहयोगी के रूप में रहे किन्तु संतानोत्पादन न करें तो बात निभ सकती है, गाड़ी चलती रह सकती है।

ऐसे विवाह सेवक या सेविका नियुक्ति के रूप में भी हो सकते हैं। निर्धारित वेतन मिलते रहने पर समयानुसार कुछ पूंजी जमा हो जाती है और उससे उस समय का सहारा हो सकता है जब घर के कलह से दोनों को अलग होना पड़े। अथवा स्वयं ही घर छोड़कर अपना स्वतंत्र ठिकाना बनाना पड़े। वृद्धावस्था के लिए हर समझदार व्यक्ति को ऐसी व्यवस्था रखनी चाहिये जिससे उन्हें बालकों पर आर्थिक दृष्टि से बोझ बन कर न रहना पड़े। जो लोग हाथ खाली कर पूरी तरह सन्तान पर आश्रित हो जाते हैं उन्हें संतान की बेरुखी और उनकी पत्नियों की तानेकशी शूल के समान चुभती है। मन मसोस कर बैठा रहने के अतिरिक्त और कोई चारा नहीं रहता। अच्छा हो कि सामने आने से पहले ही इस कठिनाई से बचे रहने का मार्ग मोड़ लिया जाये।

तलाक़शुदाओं और विधवाओं की स्थिति प्रायः समान होती है। बच्चों का प्रश्न उनके भी आड़े आता है। उनके साथ बच्चे भी भगा दिये जाते हैं। कभी-कभी उन्हें छीन लिया जाता है। दोनों ही परिस्थितियों में उनका मन कचोटता रहता है। पाश्चात्य देशों में सरकारी बालगृहों में अनाथ सन्तान के

भरण-पोषण की व्यवस्था है, परन्तु भारत में ऐसे कुछ नहीं है । मातायें अपने बलबूते पर उन्हें सुयोग्य, स्वावलम्बी नहीं बना पाती । ऐसी दशा में उन्हें बाल श्रमिक-बाल अपराधी या अवारा, भिक्षुक बनना पड़ता है ।

अच्छा हो जिनकी सन्तानें नहीं है, जो उत्तराधिकार में सम्पदा सौंपने के लिए किसी सम्बन्धी का बच्चा गोद रखना चाहते हैं, वे अपना दृष्टिकोण बदले और वंश चलाने, बुढ़ापे का सहारा ढूँढने की अपेक्षा किन्हीं अनाश्रित बालकों को स्वावलम्बी, सुनिश्चित बनाने के लिए अपने पास रख लें और परमार्थ भाव से उनका भरण-पोषण करें । अपने देश में नारी की दयनीय दशा को देखते हुए ऐसी परमार्थिक संस्थाओं की अतीव आवश्यकता है जो अनाश्रित महिलाओं विशेषकर उनके बालकों के भरण-पोषण की व्यवस्था करें । गोशाला चलाने की अपेक्षा यह पुण्य-परमार्थ किसी भी प्रकार कम सहृदयतापूर्ण नहीं है ।

जिन विधवाओं या विधुरों की सन्तान नहीं है, उनके विवाह तो परस्पर किसी प्रकार हो भी सकते हैं । परन्तु असली कठिनाई उन तलाक़शुदाओं, विधवाओं के सामने हैं जिन्हें अनाथ होते समय कोई पूँजी नहीं मिली । वरन् बच्चों का उत्तरदायित्व कंधे पर आया है । उनके लिए ऐसे महिलाश्रयों की उदारचेताओं को व्यवस्था करनी चाहिए, जहाँ रह कर वे कुछ उद्योग कर सकें और अपने बालकों का पाल सके । जहाँ ऐसी आशंका हो, वहाँ महिलाओं को पहले से ही सतर्क रहना चाहिये कि उन पर कम से कम सन्तान का उत्तरदायित्व तो न लदे । निर्धन लोगों को जो नित्य कमाते नित्य खाते हैं । सन्तानोत्पादन को एक अपराध मानकर उससे बचना चाहिये ।

14. उत्तम सन्तान कैसे प्राप्त हो?

बालक के शरीर की उत्पत्ति माता-पिता के शरीर से होती है । जैसी खरी-खोटी धातु लगाई जायेगी वैसा ही बर्तन बनेगा । जैसे ईंटें-चूने का प्रयोग होगा वैसा ही मकान बनेगा । यदि माता-पिता के शरीर स्थूल या सूक्ष्म रोगों से ग्रसित है तो सन्तान पर भी उसका प्रभाव अवश्य पड़ेगा । शरीर शास्त्र के

ज्ञाता यह भली-भाँति जानते हैं कि कितने रोग ऐसे हैं जो पीढ़ियों तक चलते हैं। कुष्ठ, मृगी, उन्माद, अर्श, क्षय आदि के बीजाणु (शुक्राणु) माता-पिता के शरीर में विद्यमान हों तो बहुधा उनका प्रभाव सन्तान में भी देखा जा सकता है। माता-पिता के रंग रूप की छाया भी बालकों पर रहती है। गोरे या काले माता-पिता की सन्तान प्रायः अपने माता-पिता के रंग की ही होती है। माँ बाप के शरीर की स्थूलता भी बालकों पर प्रकट होती देखी गई है।

वेष, भाषा, संस्कृति, रूचि, आहार-विहार आदि बातों में भी बच्चे अपने माँ-बाप का अनुसरण करते हैं। छोटा बालक माँ के उदर में ही उन बातों के बहुत कुछ संस्कार ग्रहण कर लेता है और जन्म धारण के पश्चात् उन बातों को सहज ही अपनाने लगता है। इस प्रकार शारीरिक और मानसिक दृष्टि से बालक 70% अपने जन्मदाता शरीरों की प्रतिमूर्ति होता है। वंश, जातियाँ, नस्ल, वर्ण आदि विभागों के मूल में यही तत्त्व काम करता है। यदि माता-पिता का प्रभाव सन्तान पर न आता तो इस प्रकार का वर्गीकरण दृष्टिगोचर न होता और नीग्रो, चीनी, पंजाबी, बंगाली, मद्रासी, यूरोपियन आदि जातियों में आकृति, रंग, स्वभाव आदि का अन्तर दिखाई पड़ता है वह भी न दीखता।

पिता-माता के शरीर, स्वभाव और प्रवृत्तियों का अनुसरण प्रायः अन्य सभी जीव-जन्तुओं की भाँति मानव जाति में भी होता है। साथ ही मानव के मानसिक और आध्यात्मिक सम्पत्तियों का उत्तराधिकार उसके आत्मजों को मिलता है। हम माता-पिता के धन-सम्पत्ति एवं यश-अपयश के ही नहीं उनकी आंतरिक विशेषताओं, आध्यात्मिक संपदाओं के भी उत्तराधिकारी होते हैं। उत्तम ब्राह्मण कुल में बहुधा सात्विक कुल के बालक जन्मते हैं और अधिक, म्लेच्छ एवं कसाइयों के घरों में वैसी ही प्रकृति के बच्चे जन्मते और बनते हैं।

यूं तो हर जीव अपने पूर्व जन्मों के स्वतंत्र संस्कार और प्रारब्ध साथ लाता है। इसलिए कभी-कभी सन्तान माता-पिता से भिन्न स्वभाव की होती

देखी गई है । परन्तु ऐसा होता अपवाद स्वरूप ही है । अधिकांश बच्चे अपने जन्मदाताओं के गुण, कर्म, स्वभाव के होते हैं । भारतीय वर्ण व्यवस्था में इस तत्त्व को मुख्य आधार मानकर जन्म एवं वंश को प्रधानता दी गई है । एक शरीर त्याग कर जीव एक दूसरे शरीर में आने को होता है, तो वह अपनी संचित रुचि और प्रवृत्ति के अनुकूल स्थान को ढूँढता है । रेलगाड़ी के फर्स्ट क्लास डिब्बे में यात्रा करने वाले यात्री स्टेशन पर उतर कर फर्स्ट क्लास के यात्रियों के लिए बने हुए विशेष मुसाफिरखाने में चले जाते हैं और तीसरे दर्जे में यात्रा करने वाले उसी दर्जे के निमित्त बने हुए मुसाफिरखाने में जा बैठते हैं ।

वैसे ही जीव भी अगले जन्म के लिए अपने उपयुक्त वंश में जा पहुँचता है । आकाश में उड़ते हुए पक्षी तथा कीट-पतंग अपनी रुचिकर वस्तुओं को ढूँढते फिरते हैं और जब अनुकूल अभीष्ट वस्तु मिल जाती है तब उसे प्राप्त करने के लिए नीचे उतर आते हैं । गिद्ध मृत के मांस को, कौए विष्ठा को, भौंरा फूलों को और बाज चिड़ियों को ढूँढते फिरते हैं । जहाँ उनकी मनचाही वस्तु दिखाई देती है वहीं उतर पड़ते हैं । जीवों को प्रारब्ध तो अपने कर्मनुसार ही भुगतने पड़ते हैं । जो हर कुल एवं वंश में भुगते जाने संभव हैं, परन्तु जन्म लेने के लिए वे अपनी पूर्ण संचित रुचि के अनुकूल स्थिति ही ढूंढते हैं और दयामय प्रभु उन्हें इच्छित वातावरण में ही जन्मने का अवसर प्रदान कर देते हैं ।

माता-पिता की जैसी आध्यात्मिक भूमिका होती है, उसी के अनुरूप प्रारब्ध संस्कार वाले जीवन उनके शरीर में प्रवेश करके उस वातावरण में जन्म धारण करते हैं । इसलिए यदि अपने घर में उत्तम संतान को जन्म देना है तो उसके लिए अपने आपको उत्तम बनाने के लिए प्रयत्न करना चाहिये । जो लोग स्वयं पतित दशा में है, जिनकी शारीरिक, मानसिक और आत्मिक स्थिति गिरी हुई है, उनकी सन्तान भी दीन-हीन ही रहेगी ।

कहा गया है कि संतान के कारण उसके पितरों को नरकगामी होना

पड़ता है। कारण स्पष्ट है कि संतान को समुचित पूर्ण तैयारी के बिना ही उत्पन्न कर डालना एक भारी पाप है, जिसका दण्ड उसे पारलौकिक जीवन में मिलता ही है, लौकिक जीवन में भी उसकी कम दुर्गति नहीं होती। सन्तान की हीनता और नीचता से जो अनुचित कार्य होते हैं, उनसे माता-पिता की भी निन्दा होती है क्योंकि वे सुयोग्य सन्तान उत्पन्न करने का अपना उत्तरदायित्व पूरा करने में सफल न हो सके। जो व्यक्ति अनाधिकार चेष्टा करते हैं। वे निन्दा के पात्र होते हैं। मनुष्योचित गुण जिसमें न हो वह तो पशु समान ही है। पशुओं की भाँति केवल काम प्रेरणा से गर्भाधान में प्रवृत्त हो जाना और एक असंस्कृत जीवन उत्पन्न कर देना पशु प्रवृत्ति है।

यह मानवता के प्रति, देश और जाति के प्रति एक अपराध भी है, क्योंकि उनके पाश्विक उद्देश्य के फलस्वरूप जो बालक जन्मते हैं, संसार के लिए अहितकर और अवांछनीय कार्य करते हैं। उनसे पृथ्वी का बोझ बढ़ता है और संसार में अनीति तथा अशांति की वृद्धि होती है। इस गड़बड़ी की जिम्मेदारी उन माता-पिता पर है जो संतानोत्पत्ति का महान् उत्तरदायित्वपूर्ण कार्य करने से पूर्व उसकी भावी संभावनाओं पर विचार नहीं करते। ऐसी गैर जिम्मेदारी किसी व्यक्ति की लौकिक और पारलौकिक दुर्गति का ही कारण हो सकती है। ऐसे पिता नरकगामी नहीं होंगे तो क्या स्वर्गगामी होंगे?

आज हमारे परिवार क्लेश और कलह से भर रहे हैं। उनमें मुख्य कारण असंस्कृत संतान है। घर के मुखिया एवं बड़े-बूढ़े, छोटों की उद्दण्डता, उच्छृंखलता, अनुशासनहीनता, चोरी, स्वार्थपरता, अशिष्टता से परेशान देखे जाते हैं। स्कूलों में अध्यापक सिर धुनते हैं, घर में अभिभावक की आंते-पीतें जलती हैं। क्या लड़कियां क्या लड़के सभी की चाल बेढंगी है। जब तक बचपन रहता है तभी तक उद्दण्डता करते हैं, कुछ समझदार होते हैं तो वासना और विलासिता की ओर झुक पड़ते हैं, बड़े होने पर उनकी कार्य-पद्धति स्वार्थपरता से ओत-प्रोत हो जाती है। माता-पिता के लिए, संस्कृति के लिए, मानवता के लिए यह अभिशाप ही सिद्ध होते हैं।

हमारी नई पीढ़ियाँ इसी मार्ग का अनुसरण कर रही हैं। कोई बिरले ही भाग्यशाली घर ऐसे होंगे, जिनमें कर्त्तव्य पालन, शिष्टाचार, सद्भावना, सेवा, त्याग, एवं आत्मीयता का अमृत बरसता हो। प्राचीनकाल में जो स्थिति घर-घर थी वह आज कहीं दिखाई नहीं पड़ती, जो बातें पूर्व काल में कहीं नहीं देखी जाती थी वे घर-घर में मौजूद है। परिस्थितियों में इतना भारी परिवर्तन हो जाने के कारणों में सबसे बड़ा कारण माता-पिता की गैर-जिम्मेदारी है, जो संतानोत्पत्ति के लिए आवश्यक योग्यता प्राप्त किये बिना इस भारी उत्तरदायित्व को कंधे पर उठाने का दुस्साहस कर बैठते हैं। इन्हीं भूलों के कारण आज हमारा पारिवारिक एवं सामाजिक जीवन विषाक्त बनता चला जा रहा है।

हमें नीतिवान् एवं चरित्रवान् होना चाहिए क्योंकि यह जीवन-यापन की सर्वोत्तम नीति है। हमें अपने गुण, कर्म और स्वभाव को उत्तम बनाना चाहिये। क्योंकि यह सफलता, समृद्धि और उन्नति का सुपरिचित मार्ग है। हमारा यह कर्त्तव्य है कि हम अपनी मनोभूमि को, अपने दृष्टिकोण को, अपनी विचारधारा को, अपनी कार्य पद्धति को उच्चकोटि के आदर्शों से ओत-प्रोत करे, क्योंकि इस मार्ग पर चल कर लोक और परलोक की सुख-शांति संभव है। आज कुपात्र संतान की बाढ़ आई हुई है और सम्पन्न संतति के दर्शन दुर्लभ हो रहे हैं। यदि हम श्रेष्ठ और सुखी परिवारों का निर्माण चाहते हैं तो हमें इस परिस्थिति को बदलना ही पड़ेगा।

15. गृहस्थाश्रम धर्म एक योगसाधना

गृहस्थ धर्म एक योगसाधना है, जिस व्यक्ति पर पग-पग पर उत्तरदायित्व एवं कर्त्तव्यों का भार है। यह आश्रम हमें आगे आने वाले कष्टसाध्य जीवन की एक तैयारी कराता है। यदि इसमें रह कर हम इन्द्रिय सुखों की निस्सारता, क्षणभंगुरता एवं नीरसता को न जाने और सीधे वानप्रस्थ या संन्यास आश्रम ग्रहण कर ले, तो हमारी बड़ी साधना में वासनाओं और

क्षुद्र इच्छाओं का ताण्डव चलता ही रहेगा ।

गृहस्थाश्रम अन्य तीनों आश्रमों की पुष्टि के लिए है । दूसरे शब्दों में यों कहा जाता है कि ब्रह्मचर्य, वानप्रस्थ, संन्यास—यह तीनों ही आश्रम गृहस्थाश्रम को व्यवस्थित और सुख-शांतिमय बनाने के लिए है । ब्रह्मचारी इसलिए ब्रह्मचर्य का पालन करता है कि उसका भावी गृहस्थ जीवन शक्तिपूर्ण और समृद्ध हो । वानप्रस्थ और संन्यासी लोग लोकहित की साधना करते हैं । इहलोक और संसार का सुख प्रकट करने वाला गृहस्थ धर्म ही है । यदि गृहस्थाश्रम की व्यवस्था बिगड़ जाये तो अन्य तीनों आश्रम ठीक रीति से नहीं चल सकेंगे ।

गृहस्थाश्रम से 'अहं' का विस्तार होता है । आत्म-भाव की सीमा बढ़कर उसमें परिवार के अन्य सदस्य भी आते हैं छोटे-छोटे शिशुओं की सेवा-सुश्रूषा में निःस्वार्थ भाव से संल्ग्न होना पड़ता है । स्त्री, पुत्र, सगे-सम्बन्धी, परिवार, पड़ौसी, घर के पशु-पक्षी आदि में आत्मीयता बढ़ जाती है । क्रमशः उन्नति की ओर हम चलते हैं । अन्त में व्यक्ति पूर्ण अथवा आत्मसंयमी हो जाता है । दूसरों के लिए अपने को भूल जाता है । खुदी मिटती जाती है और खुदा मिलता जाता है । गृहस्थ-योग की साधना जब अपनी विकसित अवस्था पर पहुँचती है तो आत्मा-परमात्मा में लीन हो जाती है ।

गृहस्थ हमें तुच्छता और संकीर्णता से महानता और उदारता की ओर ले जाता है, स्वार्थ का परिशोधन कर परामर्थी बना देता है । यदि हम गृहस्थ-धर्म के सब उत्तरदायित्वों को पूर्ण करते रहें, स्वार्थ हटाकर परमार्थ की साधना करते रहें, तो ब्रह्म निर्वाण प्राप्त कर सकते हैं । आत्मीयता की उन्नति का अभ्यास करने के लिए सबसे उत्तम स्थान अपना घर है । आत्मीयता के साधन में अपना दृष्टिकोण, देने और सेवा करने का बनाना पड़ता है । प्रेम की उदार भावनाओं से अपने अन्तःकरण को परिपूर्ण कर सगे-संबंधियों के लिए त्याग करना पड़ता है । इस आत्मीयता के प्रसार से घर स्वर्ग बन जाता है ।

गृहस्थ का सोपान पार करने के पश्चात् जीवनयात्रा का एक नया चरण आरम्भ होता है। व्यक्ति को प्रतीत होने लगता है कि सांसारिक सुखों के आगे भी कोई चीज है। काम, क्रोध, लोभ, मोह से भरे हुए जीवन से उसे परितोष नहीं हो पाता। वह धीरे-धीरे आत्मा के सुखमय प्रदेश में प्रवेश करता है। आत्मा का प्रदेश वह मंगलमय संसार है जहाँ इन्द्रियों की लोलुपता, आकर्षण और प्रलोभन नहीं है।

16. गृहस्थाश्रम की श्रेष्ठता महान् है

भारतवर्ष में विवाहबन्धन अत्यन्त पवित्र धार्मिक कृत्य माना गया है। इसमें अनके उद्देश्यों की प्रतीति और महान् उत्तरदायित्वों की पूर्ति के साधन समाविष्ट है। भारत के प्राचीन मुनियों ने इसमें मानव प्रकृति द्वारा आयोजित प्रजनन तथा सृष्टि विस्तार, सामाजिक सुव्यवस्था, सुदृढ़ नागरिक निर्माण और अन्त में निवृत्ति की चरम सीमा पर पहुँचने की व्यवस्था की है। धर्मशास्त्र का प्रवचन है—

तथातथैव कार्याणि न कालस्तु विधीयते।
अभिन्नेव प्रयुज्जानो ह्यस्मिन्नेव प्रलीयते।।

इस संसार के साथ हमारा संयोग है, इसी संसार में हमारा लय हो जायेगा, तब हमें जिस समय जो कर्त्तव्य हो, वही करना अनिवार्य है। व्यक्तिगत सुविधा तथा असुविधा को लेकर कर्त्तव्य के पुण्य पथ से परिभ्रष्ट होना उचित नहीं। इसलिए धर्म ने गृहस्थाश्रम को तपोभूमि कह कर उसकी महत्ता स्वीकार की है। यहाँ तक कि धर्म की दृष्टि में गृहस्थाश्रम ही चारों आश्रमों का मुख्य केन्द्र है। इस सम्बन्ध में वशिष्ठजी ने लिखा है—

गृहस्थ एव यजते गृहस्थस्तप्यते तपः।
चतुर्णामाश्रमाणान्तु गृहस्थस्तु विशिष्यते।।

गृहस्थ ही वास्तविक रूप से यज्ञ करते हैं। गृहस्थ ही वास्तविक तपस्वी है—इसलिए चारों आश्रमों में गृहस्थाश्रम ही सबका सिरमौर है।

भारतीय धर्म के अनुसार गृहस्थाश्रम प्रकृत तपोभूमि है। इस काल में दो पवित्र आत्माओं का परस्पर सामंजस्य होता है तथा वे जीवन के युद्ध में प्रविष्ट होते हैं। उन्हें पग-पग पर उत्तरदायित्व, कठिनाइयों, सांसारिक, संघर्ष, प्रतियोगिताओं में भाग लेना होता है। दोनों आत्माएं परस्पर सम्मिलित होकर एक दूसरे की सहायता करते हुए तपस्या और साधन के मार्ग पर अग्रसर होती है। प्रकृति के प्रजनन-क्रिया की सिद्धि के निमित जिस उद्दाम वासना को मानव-हृदय में प्रतिष्ठित किया है, उसकी उच्छृंखलता यौवन में आकर इतनी तीव्र हो उठती है कि सामाजिक एवं आध्यात्मिक दृष्टि से उसका संयम आवश्यक है। भारतीय धर्म ने उस उद्दाम प्रवृत्ति को स्वीकार किया है तथा विश्व की संस्थिति और सम्पूर्णता के लिए व्यक्ति के विकास के लिए उसे जरूरी माना है। अतएव प्रत्येक नागरिक को इस महायज्ञ में प्रवृत्त होने का आदेश प्रदान किया है।

गृहस्थाश्रम विषय भोग की सामग्री नहीं है, विलास मन्दिर नहीं, वरन् दो आत्मओं के पारस्परिक सहवास द्वारा शुद्ध आत्म-सुख, प्रेम और पुण्य का पवित्र प्रसाद है, वात्सल्य और त्याग की लीलाभूमि है, निर्वाण प्राप्ति के लिए शान्ति-कुटीर है। विवाह से व्यक्ति समाज का एक अंग बनता है, निर्बलता से सबलता की ओर अग्रसर होता है। उसे नये सम्बन्ध प्राप्त होते हैं, नये उत्तरदायित्व और नये आनन्द प्राप्त होते हैं। भारतीय ऋषियों ने गृहस्थाश्रम को अनेक व्रत, नियम, अनुष्ठान, आतिथ्य-सत्कार आदि पुण्य कर्त्तव्यों की लीलाभूमि बनाकर उसकी महिमा को द्विगुणित किया है। उन्होंने पारिवारिक व्यवस्था में प्रेम और वात्सल्य तथा दूसरी ओर अपने से छोटों के लिए उन्हीं के हित में त्याग तथा तपस्या के द्वारा इसे तपोभूमि के समान पवित्र बना दिया है।

भारतीय वैवाहिक जीवन मंगलमय है। उसका प्रत्येक व्रत, नियम, अनुष्ठान, पूजन-चिन्तन आदि विशेष महत्त्व रखता है। सतीत्व तथा एकपत्नीव्रत की पवित्रता से समुज्ज्वल, मातृत्व के मृदुल वात्सल्य से विभूषित, उत्तरदायित्वों के मनोरम भार से परिपूर्ण, प्रेम के प्रवाह से पूर्ण

भारतीय विवाहित जीवन त्याग का तेजोमय तीर्थ और पुण्य एवं कर्म की भूमि है। इसी के द्वारा स्त्रियों में सतीत्व तथा पुरुषों में पुरुषत्व का विकास होता है। नर-नारी के मंगलमय चिर सम्मिलिन के समय भारतीय समाज उन दोनों को प्रणय-सूत्र में आबद्ध करने के साथ ही साथ इस जन्म तथा मृत्यु के पश्चात् परलोक में भी परस्पर सहायता, सहानुभूति एवं स्नेहमय व्यापार के प्रतिज्ञासूत्र में आबद्ध करता है।

हमारा हिन्दू धर्म जिस मंगलमयी साधना को लेकर सदा व्यस्त रहता है, वह है ''प्रवृत्ति को निवृत्ति के पथ पर परचालित करना।'' हमारे यहाँ वासना की प्रवृत्ति को माना है, परन्तु साथ ही साथ इस प्रवृत्ति के परिष्कार, उन्नतिकरण और अन्ततः निवृत्ति में परिणत करना यह फल माना है, परन्तु साथ ही साथ इस प्रवृत्ति के परिष्कार, उन्नतिकरण और अन्ततः निवृत्ति में परिणत करना यह फल माना है। वैवाहिक जीवन हमारे जीवन की एक स्टेज है, जो भावी जीवन के निर्माण में सहायक है। हम सदा से यह मानते आये हैं कि असंस्कृत और उच्छृंखल प्रवृत्ति, साधना और तपस्या के द्वारा परम शान्त और त्यागमयी बनाई जा सकती है। विनाश की अपेक्षा वृत्तियों का सही मार्गों में बहाव, स्वार्थ और लालसा से निकल कर प्रेम और त्याग के मार्गों में उनका प्रवाह हमारे लिये विशेष महत्त्व रखता है। आदि कवि से लेकर पण्डितराज जगन्नाथ तक ने अपने साहित्य में गृहस्थाश्रम का मनमोहक रूप प्रतिष्ठित किया हैं कौन सा ऐसा प्रान्त है जिसमें मातृत्व की मंगलमय मूर्ति, सतीत्व का त्याग, सौन्दर्य और वात्सल्य की मन्दाकिनी प्रवाहित न हुई हो?

विवाह से पूर्णता की प्राप्ति – पृथक् पृथक् स्त्री और पुरुष अपूर्ण हैं। उनके गुण तथा स्वभाव भी अपने अन्दर एक प्रकार की कमी, हीनता और किसी अदृश्य वस्तु की कामना करते हैं। जो गुण एक में नहीं है, दूसरों में उनकी मौजूदगी आकर्षण का विषय बनती है। स्त्री-पुरुष दोनों के स्वभावों का विश्लेषण करना हो, तो निम्न प्रकार से हो सकता है। स्त्री में लज्जाशीलता, चारुता, सहजज्ञान, पतिव्रत्य, कोमलता, सूक्ष्मता, भावुकता होती है। वे मानसिक संवेगों को तीव्रता से अनुभव करती है। वे स्नेह सरोवर

की मीन हैं। उन्हें रूप-लावण्य की अनुपम राशि प्रदान की गई है। शान्तिप्रियता, सहनशीलता और धैर्य भी बहुत होता है। वे बातें बहुत कम करती हैं, परन्तु सुनती बहुत अधिक हैं।

पुरुष पाशविक वृत्तियों, शक्ति क्रोध, कार्य दक्षता तथा अहंवादी है। क्रियाशीलता और प्रभुता प्रदर्शन उसके मुख्य गुण हैं। पुरुष का मस्तिष्क पाशविक वृत्तियों के क्षेत्र में अत्यधिक बलवान् है। प्रेम, क्रोध और प्रतिशोध के समय कुछ काल के निमित्त उद्‌भ्रान्त-सा हो जाता है। प्रेम में शीघ्रता करता है। वह स्वभावतः मजबूत, निर्णायक, प्रामाणिक, स्वाभिमानी, प्रचण्ड, उग्र, दांता, उदार, कठिन परिश्रमी, बेलगाम, निग्रहहीन और युद्ध करने वाला है। उसका मन अस्थिर, चंचल-बेकाबू और एक विस्फोटक समान है।

दोनों में स्वतन्त्र यौन प्रभेद मिलते हैं। नर प्रेम करने में उन्मत्त, शीघ्र आवेगपूर्ण काम-स्थिति में प्रचण्ड है। वह प्रेम से पूर्व स्त्री को हर प्रकार से अनुगत करने में सचेष्ट रहते हैं। तत्पश्चात् प्रेमारधना में लापरवाह से हो जाते हैं। पुरुष के प्रेम में प्रचण्डता है, किन्तु वह शीघ्र ही ठण्डा हो जाने वाला ज्वालामुखी है। पुरुष के लिए प्रेम एक प्रकार का खेल है। इसके विपरीत स्त्री का सम्पूर्ण जीवन ही प्रेम से निर्मित हुआ है। वह प्रेम से ही जीती है और उसी से अपना भविष्य बनाती है। उसके आन्तरिक भावों का विकास प्रेम से ही होता है। किसी कवि ने सत्य ही कहा है—

प्रेम स्त्री का सम्पूर्ण अस्तित्व है।

स्त्री का प्रेम शांत पर सतत् प्रवाहित होने वाली सरिता की तरह गम्भीर है। वह इन्द्रियों से आरम्भ होकर आत्मिकज्ञान की ओर अभिवृद्धि को प्राप्त होने वाला है। स्त्री एक बार प्रेम-दान देकर पुरुष को अपना सर्वस्व दान देती है। उसमें भक्तिभाव, पतिव्रत्य और आत्मिकज्ञान अपेक्षाकृत अधिक है। स्त्री प्रेम से शासन करना चाहती है। उसका प्रेम विकेन्द्रित होता है, जिसमें उसके बच्चे, पति, भाई-बहन आदि सम्मिलित है। मातृत्व का भार उठाने पर उसका वात्सल्य विकसित होता है, करुणा, सहानुभूति, दया, प्रेम की नाना धाराओं में

बहने लगता है। वह अपने बच्चे पर तो प्रेम न्यौछावर करती ही है, सभी बच्चों, पशु-पक्षियों तक को भावुक दृष्टि से निहारती है। स्त्री की भावनाएं तीव्र होती है। संवेग तथा भावना का उसके हृदय में राज्य है। सोच में डूबे रहना, प्रतीक्षा करना ओर सहजज्ञान ये स्त्री के सनातन गुण हैं। वे अपने सहजज्ञान से पुरुष की साधारण और मुख्य आवश्यकताओं को पहले से ही भाँप लेती है और उसका प्रबन्ध करती है। दूसरों के मनोभावों को भाँपने तथा भविष्य में आने वाली विपत्तियों का अनुमान लगाने के लिए उन्हें विशेष गुप्त मनोवैज्ञानिक शक्तियाँ प्रदान की गई है।

मूर्धन्य मनीषी कामू के अनुसार अधिकांश स्त्रियाँ एक तीखी और गहरी दृष्टि से जान लेती है कि यह व्यक्ति कैसा है? धोखेबाज, बदमाश या सज्जन, नैतिक, बुद्धिमान। मूर्ख स्त्रियाँ दुराचारियों के वश में आ सकती है किन्तु बुद्धिमती स्त्री बड़ी चतुर होती है। वह उसके चेहरे से अन्दर के मनोभाव पढ़ सकती है। यदि आप अपना दुःख-दर्द स्त्रियों के सामने वर्णन करे तो वे सहानुभूति प्रदर्शित करेगी। वे पुरुषों की अपेक्षा अधिक भावुक है, अधिक प्रकार से मानसिक भावों का प्रकाश और अनुभव करती है। धार्मिक विचार में वे पुराने संस्कारों से चिपकी रह जाने वाली है। स्त्री पुरुष की अपेक्षा अधिक व्यवहारकुशल है, अपने व्यवहार में अधिक उदार होती है। पुरुष के प्रेम पर सदा विचार किया करती है और उसके प्रशंसायुक्त प्रेम भरे वाक्य सुनने के लिये सदैव लालायित रहा करती है। संक्षेप में पुरुष की अपेक्षा वह अधिक सहनशील, शांत, प्रतिभासम्पन्न उदार एवं सहजज्ञान युक्त होती है।

विवाह में स्त्री-पुरुष के उल्टे गुण एक दूसरे से मिलकर पूर्णता की सृष्टि करते हैं। दोनों का संयोग समाज का एक 'यूनिट' बनाता है। यही यूनिट सम्मिलित रूप में समाज को आगे बढ़ाता है। न तो पुरुष स्त्री के बराबर है, न स्त्री पुरुषों के गुणों का अनुकरण कर अपने अन्दर उन्हें उत्पन्न कर सकती है। सृष्टिकर्ता की रचना ऐसी है कि दो विभिन्न गुण वाले प्राणी भाईचारे और पारस्परिक सांझेदारी से एक दूसरे के स्वभाव और प्रकृति को समझकर

सम्मिलित रूप से आगे बढ़ते हैं । स्त्री तथा पुरुष के गुण-दोष एवं प्रकृति एक स्थान पर मिलने से व्यक्ति बनता है । यदि ये दोनों लिंगों के प्राणी एक दूसरे से पृथक् रहेंगे या लैंगिक प्रतियोगिताओं में उलझे रहेंगे, तो गृहस्थों में पारस्परिक कलह की वृद्धि रहेगी, समाज की समस्वरता नष्ट हो जायेगी ।

विवाह के पश्चात् पुरुष को स्त्री के सुख के लिये तथा स्त्री को पति के आनन्द के निमित्त कुछ बलिदान करना पड़ता है । दोनों ही एक दूसरे को सुखी देखना चाहते हैं । अपने जीवन-मित्र के लिये अधिक से अधिक त्याग करने को प्रस्तुत रहते हैं । अतः स्वार्थ और संकुचित नष्ट हो कर उदारता और त्याग की भावनाएं जाग्रत होती है । जीवन का क्रम है ''सुख की ओर अग्रसर होना ।'' इस त्याग का यह फल होता है कि दोनों ही सुखी रहते हैं । एक दूसरे के लिये सुख खोजने की प्रवृत्ति तथा उपकरण प्रस्तुत करने से अपने लिये सुख पाने का राज-पथ तैयार किया जाता है । इस प्रवृत्ति का जनक है कर्त्तव्यनिष्ठ गृहस्थ-जीवन । गृहस्थ-जीवन एक ऐसी पाठशाला है जिसमें स्त्री-पुरुष के स्वभाव एक होकर एक दूसरे की कमी पूर्ति करते हुये अधिक से अधिक सुख, समृद्धि और समाज हित के लिये अग्रसर होते हैं ।

विवाहित स्त्री-पुरुष त्याग और आत्म-समर्पण की प्रतिमूर्ति है । पुरुष सिंह के समान बलशाली, क्रोधी और तीव्र मनोविकारों का लड़ाकू जीव है । लेकिन अपनी पत्नी के समक्ष वह दयालु हो उठता है । जिस नारी को वह एक पराये घर से लाता है, अपने गृह की सम्पूर्ण व्यवस्था, गुप्त बातें उसे सौंप कर ठण्डी सांस लेता है । सब रुपया कमा कर उसी लक्ष्मी को अर्पण करता है । वह स्वयं अपने आप कुछ नहीं खाना चाहता । भूखा रह कर पत्नी के लिये अच्छी-से-अच्छी सामग्री प्रस्तुत करता है । इसी प्रकार पत्नी स्वयं दुःख उठा कर घर के कार्यों में लग कर पति को सुखी देखना चाहती है । वह अपना सुख, खान-पान, पहनावा आदि पति के सुख पर उत्सर्ग कर देती है । यह पारस्परिक आत्म-समर्पण ही गृहस्थ जीवन का निर्माण करता है ।

17. दाम्पत्य जीवन की सफलता

पुरुष का स्वभाव है कि जब तक अपनी प्रेमिका को प्राप्त नहीं कर लेता, तब तक उसे पाने के लिये अत्यन्त इच्छुक रहता है, प्राणपण से चेष्टा करता है, प्रत्येक प्रकार से प्रेम प्रदर्शन करता है और स्त्री के अतिरिक्त अन्य कुछ भी चीज नहीं प्राप्त करना चाहता है परन्तु एक बार मनचाही पत्नी पाने के पश्चात् क्रमशः उसके मनः क्षेत्र में भारी परिवर्तन होता है । विवाह आयु के तीन चार मास पश्चात् वह पत्नी की ओर से उदासीन सा होने लगता है । 40 वर्ष का होने पर उसे स्त्री में विशेष आकर्षण नहीं रह जाता । वह उसे अपने विचारों का केन्द्र नहीं मानता । प्रत्युत अन्य सांसारिक कार्यों में प्राणपण से जुट जाता है । स्त्री उसके हृदय के एक कोने में पड़ी रहती है । अधिक आयु होने पर वह स्त्री से चिढ़ने लगता है । कितने ही उनसे डरने लगते हैं । दूसरे उनसे सर्वथा उदासीन होने लगते हैं । कुछेक स्त्री को देखकर डर सकते हैं, उनकी फरमाइश पूरी नहीं करना चाहते ।

स्त्री का प्रेम आरम्भ में बिल्कुल नहीं रहता परन्तु विवाह के पश्चात् या जान-पहचान होने के पश्चात् धीरे-धीरे विकसित होता हैं तीन मील लम्बे बूँटों की रफ्तार से वह नहीं बढ़ती, जरा-जरा सी आगे चलती है । जब वह एक बार प्रेमी प्राप्त कर लेती है तो स्वभावतः उसे छोड़ना नहीं चाहती । उसमें ममता, अहं, करुणा, सहानुभूति की मात्रा अधिक है । विवाह के पश्चात् उसकी यह आकांक्षा रहती है कि पति के प्रति उसका प्रेम बढ़े । वह उसके हाथ में रहे, उसी से प्रेम करे, अन्य किसी को अपने प्रेम में कोई हिस्सा न दे । स्त्री हर प्रकार – आर्थिक, सामाजिक,धार्मिक दृष्टि से– उसकी स्वामिनी बनने को लालायित रहती है ।

स्त्री का हृदय प्रेम, करुणा, ममता एवं सहानुभूति की रंगभूमि है, वह कोमलता एवं सहनशीलता की कल्पलता है, क्षमा एवं त्याग की तपोभूमि है, वह भिन्न-भिन्न भावनाओं का आश्चर्यजनक सम्मिश्रण है । वह चिर सुन्दर है, चिर कोमल है, वह अपने प्रिय के लिए अपने सर्वस्व का त्याग कर सकती है

और अपने मान-अपमान एवं निन्दा-स्तुति की भी चिन्ता नहीं करती । वह बड़े से बड़े अपराधी को भी क्षमा कर सकती है । दो प्रतिकूल तत्त्वों का सम्मिश्रण – उक्त दोनों प्रतिकूल तत्त्वों से ही संसार का निर्माण हुआ है । इसी प्रतिकूलता में संसार का आनन्द अन्तर्निहित है । बिना पुरुष के नारी अभाव का अनुभव करती है, बिना स्त्री के पुरुष अधूरा ही रहता है । दोनों की न्यूनताएं दूसरे साथी में पूरी हो जाती हैं ।

पुरुष का निर्माण एक युद्ध करने वाले, दृढ़ी, निडर, हृदयहीन सैनिक के समान किया गया है । उसमें जीवननिर्वाह के साधनों को एकत्रित करने का साहस है । दूसरी ओर स्त्री में लावण्य एवं रूप की अनुमति राशि प्रदान की गई है । यदि पुरुष उद्दण्ड है तो स्त्री कोमल, सहनशील । पुरुष शक्ति आक्रामक है, तो स्त्री शक्ति आत्मरक्षक । पुरुष उन्नतिशील होता है, तो स्त्री धैर्यवान् । पुरुष अधिकार, शक्ति व दण्ड से शासन करता है, स्त्री अपने प्रेम से, आँसू से और मृदुलता से । यदि पुरुष शब्दों में विनय करता है तो स्त्री दृष्टि की विनम्रता से ।

(1) सफल दाम्पत्य जीवन का रहस्य – दाम्पत्य जीवन का सारे सुख केवल एक बात में है पति-पत्नी एक दूसरे के मनोभावों को समझ लें । अपने साथी की आशाओं का विश्लेषण करें । एक-दूसरे के दृष्टिकोण को सहानुभूतिपूर्वक देखें, समझे और एक-दूसरे के सम्मुख सदा सिर झुकाने को तैयार रहें तो उनका जीवन स्वर्गीय प्रकाश से परिपूर्ण हो सकता है । एक-दूसरे के मनोभावों के अनुसार चलने से उनके जीवन में प्रेम की सुखद निर्झरिणी शत शत धाराओं में बह सकती है । स्मरण रखिये जहाँ पुरुष दुर्बल है वहाँ स्त्री की शक्ति प्रकट होती है । पुरुष सर्वस्व प्राप्त कर सकता है और स्त्री सर्वस्व दान दे सकती है । स्त्री और पुरुष दोनों ही सृष्टि की महान् शक्तियाँ हैं परन्तु पूर्ण होने के लिए दोनों का सहयोग चाहिये । पुरुष एवं स्त्री का पारस्परिक सम्मिलन आत्मा का सम्मिलन है । स्त्री कल्पलता है । जब पुरुष अकिंचन हो जाता है तो स्त्री की छत्र-छाया में रह कर वह पुनः शान्ति प्राप्त कर सकता है ।

विवाह के आरम्भ में आप खूब देखभाल कर पत्नी चुन सकते हैं। खूब टीका-टिप्पणी कर सकते हैं किन्तु विवाह के पश्चात् एक दूसरे के दुर्गुणों को आँख मींच कर टाल देने में ही लाभ है। आपस की आलोचना डराने-धमकाने, मारने-पीटने से गृह कलह बढ़ता है क्योंकि हमारे अहं भाव को भारी धक्का पहुँचता है।

(2) पति को वश में करने का उपाय – जो पत्नी अपने पति का स्थायी प्रेम चाहती है उसे अपने पति के स्वभाव, प्रकृति, विचार, मनोभाव, संवेदनाओं का गहन अध्ययन करना चाहिये। पुरुष पर शासन करने के लिये यह मालूम करना चाहिये कि वह पत्नी से क्या-क्या आशाएं रखता है? उसे किस रूप में –सहायक, मित्र, प्रेमिका, गृहणी, सेविका–देखना अधिक पसन्द करता है? किन-किन गुणों, कलाओं को चाहता है? साथ ही पत्नी को यह भी मालूम करना चाहिये कि पति में कौन-कौन से दुर्गुण हैं? क्या-क्या कमजोरियाँ हैं? क्या-क्या दूसरों की कुसंगति से लग गई है?

पुरुष बल-पराक्रम का पुतला है और किसी न किसी पर शासन करने में आनन्द लेता है। अतः उसे अपने ऊपर शासन करने देकर पत्नी उसके 'अहं' को उत्तेजित कर सकती है। अतः उसे अनुशासन का अवसर दीजिये। विवाहित जीवन में छोटी-छोटी बातों पर खड़े होने वाले मतभेदों, गलतफहमियों, झगड़ों से सतर्क रहिये। यदि कोई मतभेद आये तो भी तो अपने साथी के दृष्टिकोण को सहानुभूति पूर्वक समझिये।

पति अपनी पत्नी के मुख से वचन सुनने को लालायित रहता है, जिनसे उसकी श्रद्धा और अगाध विश्वास प्रकट हो। अतः ऐसे वचन कहने में कंजूसी नहीं करना चाहिये। अपने स्वाभाविक गुणों की वृद्धि करें। कोमलता, मधुरता, सौन्दर्य बढ़ायें। पुरुष इन गुणों से अधिक आकर्षित होता है क्योंकि ये उसमें नहीं है। स्त्री के लिए हँसमुखी और रसिक होना सुन्दर होने से अधिक आवश्यक है। पुरुष स्त्री की रसिकता, हँसी, बॉकी चितवन पर अधिक आकर्षित होता है। स्त्री का जीवन छोटी-छोटी झंझटों से मुक्त होता है। यदि वह उन्हें हँस कर न टाल सके, तो पागलखानों या तपेदिक के

अस्पतालों की ही शोभा बढ़ा सकती है । पति को दास वे ही बना सकती है, जो उसके दोषों या विशेषताओं पर चिढ़ने के स्थान पर हंस कर टाल देती है ।

(3) प्रियतमा को जीतने के मनोवैज्ञानिक सूत्र – हम में जो गुण नहीं है उनसे युक्त व्यक्तियों के प्रति हम स्वतः आकर्षित होते हैं । अतः प्रियतमा को जीतने के लिये अपने पुरुषोचित गुणों बल, वीर्य, पराक्रम, साहस, अनुशासन की अभिवृद्धि कीजिए । कोमल, पतले, दुबले, कमजोर, स्त्रैण पुरुष स्त्रियोंको अच्छे नहीं लगते । स्त्री जितना वीर पुरुष से प्यार करती है उतना धनियों या पण्डितों को नहीं । स्त्री दास एवं दब्बू पुरुष को भी पसन्द नहीं करती ।

अपने वस्त्रों और वेश पर सदा ध्यान रखें । स्त्री यदि अपने सौन्दर्य की चिन्ता करती है, यदि तुम्हारी प्रसन्नता के लिए, उसकी अभिवृद्धि के लिए वह निरन्तर चेष्टा करती है तो इसका यह अर्थ है कि वह सौन्दर्य का मूल्य समझती है और तुम्हें भी आकर्षक, साफ-सुथरे रूप में देखना चाहती है । स्त्री की खूबियाँ बयान करो, उसका आदर करो, उसके उत्तम कार्यों पर अपनी प्रसन्नता प्रकट करो और इन सबके लिए थोड़ी प्रशंसा भी करो । बार-बार उसे यही भी दर्शाओ कि तुम उसे बहुत प्रम करते हो । यह समझकर चुप न रह जाओ कि उससे एक बार तो कह ही दिया है । वह आपके मुख से अपने प्रति बार-बार सुनना पसन्द करती है ।

18. दाम्पत्य-जीवन को सुखी बनाने वाले स्वर्ण-सूत्र

वैवाहिक जीवन में सुख-दुःख के आर्थिक और सामाजिक कारण अवश्य होते हैं । परन्तु मुख्य कारण मनोवैज्ञानिक होते हैं । पति-पत्नी में अनेक अज्ञात भावनाएं प्रसुप्त इच्छाएं, पुराने संस्कार कल्पनाएं होती हैं । जो अप्रकट रूप से प्रकाशित हो जाती है । प्रायः दो प्रेमी प्रसन्नता से वैवाहिक सूत्र में आबद्ध होते हुए देखे गये हैं । परन्तु विवाह के कुछ काल पश्चात् उनका पारस्परिक आकर्षण न्यून होता देखा जाता है । बाद में तो वे परस्पर घृणा तक करने लगते हैं । इस घृणा के कारण प्रायः आन्तरिक होते हैं । इसका

मुख्य कारण व्यक्ति की उभयलिंगता है जिसका अभिप्राय यह है कि हर एक पुरुष में स्त्रीत्व का अंश विद्यमान है तथा हर स्त्री में पुरुषत्व का। बड़े होने पर किन तत्त्वों की प्रधानता हो जायेगी, इस मनोवैज्ञानिक आधार पर स्त्री-पुरुष का मेल निर्भर है। यदि संयोगवश ऐसे दो प्राणी वैवाहिक सूत्र में आबद्ध हो गये हैं, जिनमें एक ही लिंग की प्रधानता है—जैसे स्त्री में पौरुषत्व और पुरुष में भी पुरुषत्व के गुण बढ़े हुए हैं अथवा स्त्री में तो स्त्रीत्व है ही, उसके पति में भी स्त्री-तत्त्व की प्रधानता है, तो वैवाहिक जोड़े में साम्य, सुख-समृद्धि और आन्तरिक सन्तुलन न रह पायेगा।

वस्तुतः में दाम्पत्य जीवन का वास्तविक सुख तभी प्राप्त हो सकता है, जब स्त्री में स्त्रीत्व के गुणों का तथा पुरुषों में पुरुषोचित गुणों का स्वाभाविक और अबाध विकास हो। इसका अभिप्राय यह नहीं कि उनमें विपरीत गुण बिल्कुल ही न हो। इसका आशय केवल इतना ही है कि पुरुष में पुरुषत्व की प्रधानता हो और स्त्री में स्त्रीतव की प्रधानता हो। पुरुष में स्त्रीत्व के गुण केवल गौण रूप से और स्त्री में पुरुषत्व के गुण गौण रूप से रह सकते हैं।

(1) पुरुषत्व के गुण – पुरुष का प्रधान गुण है पौरुष अर्थात् शक्ति, साहस, निर्भयता, सक्रियता। उनमें (1) शरीर बल, (2) मानसिक बल, (3) चरित्र बल, (4) संकल्प बल की प्रधानता है। पुरुष का निर्माण सतत् युद्ध करने वाला, कठोरता, दृढ़ता और पाशविक शक्ति से पूर्ण जीव की भाँति हुआ है। पुरुष अहंकारी, क्रोधी, तामसी, मदोन्मत, प्रेमोन्मत है। उसे शक्ति का स्रोत कहना युक्तिसंगत होगा। आदि प्रकृति का बर्बर जंगली पुरुष आज भी उसमें जाग रहा है। पुरुष स्वभाव से ही उपार्जनशील और रमणशील है। वह अपने अन्दर एक शक्ति का अनुभव करता है और उसी से प्रेरित होकर शीघ्रता और आतुरता में काम करता है।

(2) स्त्रीत्व के गुण – स्त्री कोमलता, मृदुता, सौम्यता एवं सहानुभूति की खान है। उसमें भावनाओं की प्रचुरता है, दयालुता, स्नेह, सौकुमार्य, विवेक है। उसका भाव पक्ष पुरुष की अपेक्षा विशेष उन्नत एवं परिपक्व है। वह गम्भीरता से सोचती है, उसके दृष्टिकोण में विशालता है, उसकी अन्तर्दृष्टि

अत्यन्त व्यापक है । स्त्री स्वभाव और शरीर से कोमल है ।

स्त्री और पुरुष को अपने अन्दर ही सीमित रहने में सुख का अनुभव नहीं होता, वरन् वे विपरीत सेक्स वाले प्राणी के सहवास में रहकर पूर्णत्व की प्राप्ति के लिए इच्छुक होते हैं । एक दूसरे के प्रत्येक कार्य में सहायता करते हैं और अतृप्त कामनाओं को पूर्ण करते हैं, पुरुष जब पवित्र त्यागमयी भावनाओं से अपनी पत्नी को अपने समान सीमित कर उच्च आध्यात्मिक भूमि पर लाता है, तो उसे उसके पौरुष में विश्वास होता है । इसी प्रकार स्त्री सहायक, मित्र विपत्तियों में धैर्य प्रदान करने वाली, सहनशील बन कर पुरुष को समुन्नत करती है ।

सुखी, सन्तुष्ट, पवित्र भावनाओं वाले, संयमशील और शिक्षित पति-पत्नी के बच्चे आरम्भ से ही उच्च संस्कार लेकर जन्मते हैं और पूर्ण गृहस्थ फलता-फूलता है । पति-पत्नी की हिंसात्मक क्रियाओं का स्थान रचनात्मक प्रवृत्तियां ले लेती हैं । मनोविश्लेषण की दृष्टि से बांझ स्त्री तथा वह पुरुष जिसके बच्चे न हो, भयानक विषैली भावना ग्रंथियों से ग्रसित रहते हैं, हिंसात्मक, घृणास्पद और बेरहमी के कार्य करते हैं । जब स्त्री-पुरुष को अपनी उच्चता, पवित्र आध्यात्मिक गुप्त शक्तियों में विश्वास होने लगता है, तब उनकी दबी हुई प्रवृत्तियों का रुझान रचनात्मक कार्यों की ओर अधिक हो जाता है । घृणा, क्रोध, ईर्ष्या, स्वार्थ नष्ट हो जाते हैं । विवाहित स्त्रियाँ कुंवारियों से अधिक जीती हैं ।

गृहस्थ जीवन को सुखी बनाने के स्वर्ण सूत्र – डेलकार्नेगी ने दाम्पत्य मनोविज्ञान का गूढ अध्ययन कर जो निष्कर्ष निकाला है, उससे आज पाश्चात्य देशों में क्रांति हो गई है । इसमें स्त्री-पुरुष के मन की अपेक्षा गुप्त भेदों का ज्ञान भरा पड़ा है । इनमें से कुछ निम्नलिखित हैं–

(1) पतियों को तंग मत करो – यह नियम स्त्रियों के लिए है, जो समय-कुसमय अपने पति से उसकी आर्थिक स्थिति को ध्यान में न रख भाँति-भाँति की फरमाइश करती है । जीभ पर अधिकार न होना, प्रलोभन,

सिनेमा देखना, आभूषण, अच्छे वस्त्रों की जिद्द से पति परेशान हो उठता है। विचार तथा स्वभाव के मतभेद होते हैं, फिर बढ़ कर पारिवारिक जीवन को नष्ट करते हैं।

(2) आलोचना मत करो – पति या पत्नी जब एक-दूसरे की कमजोरियों, खराबियों पर ध्यान देने लगते है, तो फिर प्रेम-डोर टूट जाती है। प्रेम की उच्च भूमिका में आपको एक दूसरे की कमजोरियों को भी सहन करना है। यदि शीघ्र ही एक दूसरे की त्रुटियों पर ध्यान एकाग्र हो जाये तो एकाग्रता के नियमों के अनुसार उन्हीं की अभिवृद्धि होगी।

(3) निष्कपट भाव से प्रशंसा करो – अपने जीवन-साथी को उत्साहित करना, ऊँचा उठाना, शिक्षित, सुसंस्कृत, सभ्य नागरिक बनाना आपका कर्त्तव्य होना चाहिये। प्रत्येक अच्छाई की प्रशंसा कीजिए और दिल खोल कर कीजिए। प्रशंसा से उनके और भी गुण, अच्छा स्वभाव विकसित हो सकेगा। मित्रभाव, सहनशीलता सहयोग बढ़ेगा। अधिकांश पत्नियाँ अच्छी ही होती है, परन्तु पति के उत्साहित न करने से, उनका विकास रुक जाता है। झिड़कने, मारने, पीटने, अशिष्ट व्यवहार करने या निर्दयता का व्यवहार करने से पत्नी का हृदय टूक-टूक हो जाता है। गुप्त विश्वास टूटते ही तलाक की नौबत आती है। अतः पति को सदा सर्वदा पत्नी को उच्च गुणों के सुझाव ही देने चाहिये। निष्कपट भाव से उसके प्रत्येक कार्य, घर की सजावट, रसोई, बनाव-शृंगार, शिशुपालन आर्थिक सहयोग की प्रशंसा करनी चाहिये।

(4) छोटी-छोटी बातों का ध्यान रखो – गृहस्थी छोटी-छोटी बातों से टूटती और बनती है। स्त्रियाँ पति को साफ-सुथरा देखना पसन्द करती हैं, अपनी बाबत अच्छे विचार पुनः-पुनः सुनना चाहती हैं, अपने कपड़ों, घरेलु व्यवस्था, भोजन की प्रशंसा सुनना चाहती हैं। यदि आप उनके किये हुए कार्य में कोई दिलचस्पी नहीं दिखाते, तो वह क्यों अच्छी बनेगी।

कुछ व्यक्ति रुपया पैसा अपने हाथ में रखते हैं और पत्नी को दो-दो चार-चार रुपये मांगने पड़ते हैं। उसके अहं को धक्का पहुंचता है। अपने

अन्दर वह हीनत्व की भावना का अनुभव करती है, जिससे पारस्परिक प्रेम में दरार पड़ जाती है। अतः पत्नी के प्रति व्यवहार में सावधानी बरतनी चाहिए। उसकी उचित और नैतिक मांगों की पूर्ति में आलस्य करना घर में झगड़े का वृक्ष बोना है। जो युवक-युवती एक-दूसरे पर अंधाधुंध आसक्त होकर विवाह करते हैं, वे एक दूसरे के सुख और आनन्द पाने की बड़ी आशायें लेकर आते हैं। यदि दोनों एक दूसरे की छोटी-छोटी बातों का ध्यान न रखें तो शीघ्र ही दाम्पत्य जीवन कंटकाकीर्ण हो जाता है। एक दूसरे का मन रखने के लिए पर्याप्त समझ, साहस और कड़े परिश्रम की आवश्यकता है।

पत्नी से कुछ भी मत छिपाइए अन्यथा वह शक करेगी और गुप्त मानसिक व्यथा से दग्ध होती रहेगी। उसे यह बतला दीजिए कि आप क्या कमाते हैं? कैसे व्यंग्य करते हैं? कितना बीमा करा रखा है? किसके नाम वसीयत है? आय-व्यय कैसे चलता है? भविष्य में आपकी क्या-क्या योजनाएं हैं? कितना रुपया आपने एकत्रित किया आदि। पति को निरन्तर कोमलता और निरन्तर पत्नी की देख-रेख द्वारा उसके प्रति अपने प्रेम का प्रकाश करते रहना चाहिए अन्यथा प्यार की भूखी स्त्री जहाँ भी उसे प्रेम मिलेगा, उसी ओर आकर्षित हो जायेगी। विवाह के पश्चात् जब तक जीवित रहें, प्रेम दान करते रहना चाहिये। शिष्टाचार की छोटी-मोटी बातों को इज़्ज़त और नये-नये उपहार लाने की बात भूल नहीं जाना चाहिये। क्योंकि स्त्रियाँ इस बात को बहुत महत्त्व देती हैं। स्त्री प्रेम के अभाव में साधारण सुख का जीवन भी व्यतीत नहीं कर सकती। प्रेम उसकी आत्मा का भोजन है।

(5) सुशील बनो – आपको ऐसा चुम्बक बनना चाहिये, जिससे आकर्षित होकर स्त्री अथवा पुरुष आपसे कुछ आध्यात्मिक प्रेरणा, उत्साह, शिक्षा, पथप्रदर्शन प्राप्त कर सके। प्रसन्नता, सौम्यता और सुशीलता से आप घर भर में रस संचार कर सकते हैं। ऐसा पति किस अर्थ का जिसके घर में प्रवेश करते ही सब डर जायें, बच्चे दुबक जायें, खामोशी और मुर्दानी छा जाये? विनयशीलता से आप अपनी पत्नी की इच्छाएँ समझ सकेंगे। उसकी अनुचित फरमायशों को तर्क और बुद्धि द्वारा धीरे-धीरे दूर कर सकेंगे। क्रोध,

मारपीट, द्वेष या तलाक द्वारा आप कदापि कुछ न कर सकोगे। समानता, निष्कपटता, शिष्टता का व्यवहार ही सम्मानीय है।

(6) कामशास्त्र की भिज्ञता की अनिवार्यता – व्यक्ति का काम-जीवन का क्या तात्पर्य है? उसकी निगूढतम गुत्थियों का अध्ययन प्रत्येक स्त्री-पुरुष के लिए अतीव उपयोगी है। सस्ती बाजारू अश्लील पुस्तकों से सावधान। यह मार्ग बड़े उत्तरदायित्व और आर्थिक परीक्षा का है। अतः इसकी पुस्तकों के चुनाव विवेकपूर्ण ढंग से होना चाहिये।

दाम्पत्य कलह का एक कारण दाम्पत्ति का, विशेषकर पुरुष का काम विज्ञान से अनभिज्ञ होना है। पुरुष स्वभाव से ही ढीठ और स्त्री शीलवती है। इसके अतिरिक्त वह केवल पतित्व की वेदी पर ही अपने को निछावर करने में आनन्द मानती है, वह पतित्व के साथ ही दाम्पत्य प्रेम भी चाहती है। जो पुरुष प्रथम संयोग में ही स्त्री को अपनी कामना का शिकार बनाने की बर्बरता करता है वह भयंकर भूल करके दम्पत्य कलह का बीज बोता है। विषय मानसिक विकार एवं शरीर का मूल पदार्थ है। किन्तु पवित्र दाम्पत्य प्रेम को हृदय की उच्चतम अभिव्यक्ति है। हृदय के आदान-प्रदान में पर्याप्त समय लगता है। हृदय ही स्त्री की सम्पत्ति है। वह सहज ही पुरुष को नहीं देती और एक बार देकर फिर वापिस नहीं लेना चाहती। अतः कामविज्ञान के शिक्षण से व्यक्ति नारी हृदय की निगूढतम गहराइयों की शिक्षा पाकर बर्बरता, निष्ठुरता से बच सकता है।

उपरोक्त नियमों के पालन से बहुत लाभ हो सकता है। स्मरण रखिए गृहस्थाश्रम पति और पत्नी की साधना का आश्रयस्थल है। यहाँ जीवन की, धर्म, अर्थ और काम की साधना की जाती है। पति-पत्नी दोनों एक दूसरे के पूरक हैं, सहायक हैं, मित्र हैं। दोनों का कार्य एक दूसरे के गुणों की अभिवृद्धि करना है, क्षुद्रताओं का उन्मूलन करना है और परस्पर एक अभिननता बनाये रखना है। इसके लिए प्रत्येक को संयम, सहनशीलता एवं स्वार्थ त्याग अपने अन्दर विकसित करना चाहिये। पति का नाम भर्ता अर्थात् भरण और पोषण करने वाला है। पत्नी में उसकी शारीरिक, मानसिक, सांस्कृतिक, सामाजिक

जो विभूतियाँ या न्यूनताएं हैं, उनकी पूर्ति का उत्तरदायित्व भी उसी के ऊपर है। उसकी शक्तियों का विकास करे, पोषण करे, कुत्सित मार्ग से बचावे तथा सर्वदा सन्तुष्ट रखे।

पत्नी साधिका है। जिस प्रकार एक साधक अपने प्रभु की साधना में अपना सर्वस्व समर्पण कर देता है, उसी प्रकार पत्नी अपने मन में द्वेष की भावना न रखकर पति को अपना आराध्य मानकर अपना भला और बुरा सब कुछ सौंप दे। यदि पति कुमार्गगामी हो, तो प्रेम प्रशंसा और युक्ति द्वारा उसका परिष्कार करे। कुमार्गगामिता एक मानसिक रोग है। अशिक्षा और मूढता की निशानी है। इस रोग के उपचार के लिए समझने, तर्क, बुद्धि तथा स्वास्थ्य की दृष्टि से कुमार्ग की हीनता प्रदर्शित करने की आवश्यकता है। निराश होने के स्थान पर प्रयास-पुरुषार्थ से अधिक लाभ हो सकता है। पितृ ऋण के उद्धार का एकमात्र साधन दाम्पत्य जीवन की शान्ति है। सन्तान का उत्पादन और सुशिक्षण योग्य दम्पत्ति के बिना कदापि सम्भव नहीं है। योग्य मात-पिता, उचित वातावरण, घरेलू संस्कार, पुस्तकों तथा सत्संग द्वारा योग्य सन्तान उत्पन्न होती है। योग्य सन्तान के इच्छुकों को सर्वप्रथम अपना परिष्कार एवं सुधार करना चाहिये।

दाम्पत्य जीवन का उद्देश्य भोग नहीं उन्नति है। सब प्रकार की उन्नति के लिए दाम्पत्य जीवन आपको अवसर प्रदान करता है। यहाँ पहले शरीर, फिर सामाजिक जीवन, व्यक्तिगत जीवन और आध्यात्मिक जीवन की उन्नति के साधनों को एकत्रित करना चाहिए। उन साधनों को अपनाना चाहिये जिससे परस्पर का द्वैत नष्ट हो और आत्मरति एवं आत्मप्राप्ति की ओर दोनों जीवन-साथी विकासमान हो। जब दोनों एक दूसरे की उन्नति में सहयोग प्रदान करेंगे, तो निश्चय ही अभूतपूर्व गति उत्पन्न होगी।

भोग का शमन भोग से नहीं होता। भोगने से वासनाएँ द्विगुणित होती है और अपने चंगुल से व्यक्ति की मुक्ति नहीं होने देती। एक के पश्चात् दूसरा प्रलोभन व्यक्ति को आकर्षित करता है। अतः जितने से शरीर, मन, आत्मा की उन्नति हो, उतने से ही सम्पर्क करना चाहिये। जीवन में

फैशनपरस्ती, अभक्ष पदार्थों का उपयोग, नशीली वस्तुओं, रुपया उधार देना या लेना, व्यर्थ के दिखावे बढ़ाने से मनुष्य उनका गुलाम बन जाता है। इनमें व्यवधान उपस्थित होने से कलह बढ़ता है। स्त्री-पुरुष का दाम्पत्य सम्बन्ध आत्म-यज्ञ के लिये है। यज्ञ में ईश्वरीय शक्तियों का विकास एवं आत्मभाव का विस्तार होता है। उच्च संस्कारों द्वारा मानव जीवन को परिपुष्ट करने के लिए ही यह दाम्पत्य जीवन का निर्माण किया गया है। इसलिये स्त्री-पुरुष को विषय-वासना का गुलाम नहीं बनना चाहिये। भोग से जितनी दूर रहा जाये, उतना ही अच्छा है।

19. शान्तिमय गृहस्थ जीवन

आपका परिवार का एक छोटा-सा स्वर्ग है, जिसका निर्माण आपके हाथ में है। परिवार एक ऐसी लीला भूमि है जिसमें पारिवारिक प्रेम, सहानुभूति, सम्वेदना, मधुरता अपना गुप्त विकास करते हैं। यह एक ऐसी साधना भूमि है, जिसमें मनुष्य को निज कर्त्तव्यों तथा अधिकारों, उत्तरदायित्वों एवं आनन्द का ज्ञान होता है। व्यक्ति को इस भूतल पर जो सच्चा और अकृत्रिम सौख्य और दुःख से मुक्त सुख प्राप्त हो सकता है वह कुटुम्ब का ही सुख है।

कुटुम्ब की देवी स्त्री है। चाहे वे माता, बहन या पुत्री किसी भी रूप में क्यों न हो। उन्हीं के स्नेह से, हृदय की करुणा, रस स्निग्ध वाणी और सौन्दर्यशील प्रेम से परिवार सुखी बनता है। वह स्त्री जिसका हृदय दया और प्रेम से उछलता है परिवार का सबसे बड़ा सौभाग्य है। उसकी वाणी में सुधा की सी शीतलता और सेवा में जीवनदायिनी शक्ति है। उसके प्रेम की परिधि का निरन्तर विकास होता है। वह ऐसी शक्ति है, जिसका कभी क्षय नहीं होता और जिसका उत्साह एवं प्रेरणा, परिवार में नित्य नवीन छटाएं, पूर्णता में नवीनता उत्पन्न का मन को मोद, बुद्धि को प्रबोध और हृदय को संतोष प्रदान करती है।

हिन्दू परिवार में पुत्र क्षणिक आवेश में आकर स्वच्छन्द विहार के लिये परिवार का तिरस्कार नहीं करता वरन् परिवार के उत्तरदायित्व को और भी

दृढ़ता करता है। हिन्दू जीवन में पति उत्तरदायित्वों से भरा हुआ प्राणी है। अनेक विघ्नों के होते हुए भी उसका विवाहित जीवन मधुर होता है। यहाँ संयम, निष्ठा, आदर, प्रतिष्ठा तथा जीवन-शक्ति को रोक रखने का सर्वत्र विधान रखा गया है। यदि यह संयम न हो तो विवाहित जीवन गरलमय हो सकता है। हिन्दू, नारी को भोग-विलास की सामग्री नहीं, नियंत्रण प्रेरणा, साधना, विघ्नबाधाओं के साथ देने वाली जीवन-संगिनी के रूप में देखता है।

(1) इन दैवी गुणों की वृद्धि कीजिए – पारिवारिक जीवन को मधुर बनाने वाला मुख्य गुण निःस्वार्थ प्रेम है। यदि प्रेम की पवित्र रज्जु से परिवार के समस्त अवयव सुसंगठित रहें, एक दूसरे की मंगल कामना करते रहें, एक-दूसरे को परस्पर सहयोग प्रदान करते रहें, तो सम्पूर्ण सम्मिलित कुटुम्ब सुघड़ता स चलता रहेगा। परिवार एक पाठशाला है, एक शिक्षा संस्था है, जहाँ हम प्रेम का पाठ पढ़ते हैं। अपने पारिवारिक सुख की वृद्धि के लिये यह स्वर्णसूत्र स्मरण रखिये कि आप अपने स्वार्थों को पूरे परिवार के हित के लिए अर्पित करने को प्रस्तुत रहे। हम अपने सुख की इतनी परवाह न करें, जितनी दूसरों की। हमारे व्यवहार में सर्वत्र शिष्टता रहे। यहाँ तक कि परिवार के साधारण सदस्यों के प्रति भी हमारे व्यवहार शिष्ट रहें। छोटों की प्रतिष्ठा करने वाले, उनका आत्म-सम्मान बढ़ाने वाले उन्हें परिवार में अच्छा स्थान देकर समाज में प्रविष्ट कराने वाले भी हमी हैं।

छोटे-बड़े, भाई-बहन, घर के नौकर, पशु-पक्षी सभी से आप उदार रहे। प्रेम से अपना हृदय परिपूर्ण रखें। सबके प्रति स्नेहसिक्त, प्रसन्न रहें। आपको प्रसन्न देखकर घर भर प्रसन्नता से फूल उठेगा, प्रफुल्लता वह गुण है जो थके-हारे सदस्यों तक में नवोत्साह भर देता है। आप अपने परिवार में खूब हंसिये, खेलिये, क्रीड़ा कीजिए। परिवार में ऐसे रम जाइए कि आपको बाहरीपन मालूम न हो। आत्मा तृप्त हो उठे। चुन-चुन कर अपने परिवार में मनोरंजन के भी नवीन ढंग अपनायें। लेकिन इन सब के मूल में जो वृत्ति है वह हँसी-विनोद और विश्राम की है।

(2) सरसता का अद्‌भुत प्रभाव – जिनका स्वास्थ्य रूखा, दार्शनिक, चिन्तित है, उन्हें तुरन्त प्रसन्न करने का उद्योग एवं अभ्यास करना चाहिये।

रूखापन जीवन का सबसे बड़ा शत्रु है । कई व्यक्तियों का स्वभाव बड़ा शुष्क, कठोर और अनुदार होता है । उनकी आत्मीयता का दायरा बड़ा संकुचित होता है । उस दायरे में बाहर के व्यक्तियों तथा पदार्थों में उन्हें कोई दिलचस्पी नहीं होती । पास-पड़ोस के व्यक्तियों तक में उन्हें कोई दिलचस्पी नहीं । किसी के हानि-लाभ उन्नति-अवनति, खुशी-रंज, अच्छाई-बुराई, तरक्की से उन्हें कोई मतलब नहीं होता । ऐसे व्यक्ति प्रसन्नता में भी कंजूस ही रहते हैं । अपने रूखेपन के प्रत्युत्तर में दुनियाँ उन्हें बड़ी रूखी, नीरस, कर्कश, खुदगर्ज, कठोर और कुरूप प्रतीत होती है ।

रूखापन परिवार के लिए रेत की तरह बेमजे हैं । तनिक विचार कीजिए, रूखी में क्या मजा है, रूखे बाल कसे अस्निग्ध प्रतीत होते हैं, रूखी मशीन कैसी खड़खड़ चलती है, रूखे रेगिस्तान में कौन रहना पसन्द करेगा? प्राणी मात्र सरसता के लिए तरस रहा हैं वह आपका प्रेम, सहानुभूति, दया, करुणा, प्रशंसा, उत्साह, आह्लाद चाहता है । पारिवारिक सौभाग्य के लिए सरसता और स्निग्धता की आवश्यकता है । व्यक्ति का अन्तःकरण रसिक है । स्त्रियाँ स्वभाव से ही कवि हैं, भावुक है, सौन्दर्य उपासक है, कलाप्रिय है, प्रेममय है । मानव-हृदय का यही गुण है जो उसे पशु जगत् से ऊँचा उठाता है ।

सहृदय बनिये । सहृदयता का अभिप्राय कोमलता, मधुरता, आर्द्रता हैं सहृदय व्यक्ति सब के दुःख में हिस्सा बंटाता है । प्रेम तथा उस्ताह देकर नीरस हृदय को सींचता है । जिससे यह गुण नहीं है, उन्हें हृदय होते हृदयहीन कहा जाता है । हृदयहीन का अर्थ है 'जड़ पशुओं से भी नीचा' । नीरस गृहस्वामी पूरे परिवार को दुःखी बन देता है । जिसने अपनी विचारधारा और भावनाओं को शुष्क, नीरस और कठोर बना रखा है, उसने अपने आनन्द, प्रफुल्लता और प्रसन्नता के भण्डार को बंद कर रखा है । वह जीवन का सच्चा रस प्राप्त करने से वंचित रहेगा । आनन्द का स्रोत सरसता एवक अनुभूतियों में है । परमात्मा को आनन्दमय निर्देश किया गया है । क्यों? क्योंकि वह कठोर और नियंत्रणप्रिय होते हुए भी सरस और प्रेममय है । श्रुति कहती है—'रसोवैसः' अर्थात् परमात्मा रसमय है । परिवार में उसे प्रतिष्टित करने के लिए वैसी ही

लचीली, कोमल, स्निग्ध और सरस भावनायें विकसित करनी पड़ती हैं ।

(3) नियंत्रण आवश्यक है – जब हम आप से सरसता को विकसित करने का आग्रह करते हैं, तो हमारा अभिप्राय यह नहीं है कि आप नियंत्रण को भी टूट जाने दें । हम नियंत्रण के पक्षपाती हैं । नियंत्रण से आप नियमबद्ध, संयमी, अनुशासनबद्ध, आज्ञाकारी परिवार की उत्पत्ति करते हैं । परिवार के नियंत्रण में आप दृढ़ रहें, गलतियों पर डांटे-फटकारें, सजायें दें और पथभ्रष्ट को सन्मार्ग पर प्रतिष्ठित करें । परिवार की उन्नति के लिए आप कड़ा कदम उठा सकते हैं ।

पर एक बात कदापि विस्मृत न कीजिए । आप अन्ततः हृदय को कोमल, द्रवित होने वाला, दयालु, प्रेमी और सरस ही रखिये । संसार में जो सरलता का, सौंदर्य का अपार भण्डार भरा हुआ है उसे प्राप्त करना सीखिये । अपनी भावनाओं को जब आप कोमल बना देते हैं, तो आपके चारों ओर आने वाले हृदयों में अमृत-सा झरता हुआ प्रतीत होता है । भोले-भाले, मीठी-मीठी बातें करते हुए बालक प्रेम की प्रतिमाएं – माता, बहन, पत्नी, अनुभव ज्ञान और शुभ कामनाओं के प्रतीक वृद्धजन–ये सब प्रभु की ऐसी आनन्दमय विभूतियाँ हैं, जिन्हें देख कर परिवार में व्यक्ति का हृदय कमल के पुष्प के समान खिल जाना चाहिये ।

परिवार एक पाठशाला है जो हमें आत्मसंयम, स्वसंस्कार, आत्मबल और निःस्वार्थ सेवा की अनमोल शिक्षायें देती हैं । प्रतिदिन हम परिवार की भलाई के लिए कुछ न कुछ करते रहें, अपना निरीक्षण स्वयं करें । परिवार के प्रत्येक समझदार व्यक्ति को चाहिए कि प्रति रात को सावधानी के साथ अपने आप का निरीक्षण करें । यह देखें कि आज मैंने कौन-सा कार्य पशु के समान और कौन-सा देवता के समान किया है । यदि प्रत्येक व्यक्ति सहयोग और निःस्वार्थ सेवा की भावना से परिवार की सम्पन्नता में हाथ बँटावें, तो गृहस्थ सुख-धाम बन सकता है ।

(4) हमें अधिकार दीजिए - एक दूषित भावना – आए दिन इस बात का झगड़ा रहता है कि हमें अधिकार दीजिए । नवयुवक-नवयुवतियाँ तथा अन्य

सदस्य अधिकारों की रट लगाये है। अधिकार मांगने की प्रवृत्ति दूषित स्वार्थ की भावना पर अवलम्बित है। वे दूसरों को कम देकर उनसे अधिक लेना चाहते हैं। यह स्वार्थमयी भावना जिस दिन अंकुरित होती है, परिवार से सुख और शान्ति की भावना का तो उसी दिन तिरोभाव हो जाता है। प्रत्येक व्यक्ति छोटे के साथ अनुचित व्यवहार करता है और कहता है कि हमारा अधिकार है। सास-बहू पर अनुचित अधिकार जमाती है। बड़ा भाई छोटे भाई से दुर्व्यवहार करता है।

'अधिकार' माँगने वाला दूसरे से कुछ चाहता है, परन्तु दूसरे को देने की बात विस्मृत कर बैठता है। उसे यह ज्ञान नहीं कि अधिकार और कर्त्तव्य साथ-साथ चलते हैं। इस हाथ दीजिए, उस हाथ लीजिए। इस माँग और भूख की लड़ाई में ही गृहस्थ जीवन का सुख विदा होना आरम्भ हो जाता है। प्रेम, समता, त्याग और समर्पण – ये ऐसी दैवी विभूतियाँ हैं जिनसे गृहस्थ स्वर्ग बनता है। वहाँ अधिकार नामक शब्द का प्रवेश निषेध है। वहाँ तो दूसरा शब्द 'कर्त्तव्य' ही प्रवेश पा सकता है। परिवार के प्रत्येक सदस्य का उत्तरदायित्व है, कुछ न कुछ कर्त्तव्य हैं वह अपना कर्त्तव्य करता चले। जो तुम्हारा अधिकार है वह तुम्हें अनायास ही प्राप्त हो जायेगा। लेकिन कर्त्तव्य की बात भूल कर केवल अधिकार की माँग लगाना नैतिक दृष्टिकोण से गर्हित है। सारे बखेड़ों की इस जड़ को काट देना चाहिये।

संसार के सम्बन्धों को देखिए। दुनियाँ का सब कार्य स्वयं ही आदान-प्रदान से चल रहा है। जब कुछ दिया जाता है, तब तुरन्त ही कुछ मिल जाता है। देना बंद होते ही, मिलना बंद हो जाता है। अतः लेने की इच्छा पर देने की भावना पहले बना लेना आवश्यक होता है। अधिकार में केवल लेने की ही भावना भरी रहती है, त्याग, बलिदान, सेवा, सहानुभूति की नहीं। इसलिए पारस्परिक प्रेम का क्षय आरम्भ होता है। जिस दिन वह अधिकार की लालसा गृहस्थ-जीवन में प्रविष्ट हो जाती है, गृहस्थ कलह का अखाड़ा बन जाता है। आज पढ़े-लिखे, मदान्ध नवयुवक इसी भावना को मन में भरे पृथक् कुटुम्बों की आवाज बुलन्द करते हैं। अपने ही हाथों उन्होंने अपने सुख-सुविधा को लात मार दी है।

अधिकार अभिप्राय है—दूसरों को अपने आधीन रखना, अपने सुख का, भोग का यंत्र बनाना। जब किसी भावना का प्रवाह एक ओर से चलना प्रारम्भ हो जाता है, तो उसकी प्रतिक्रिया दूसरी ओर से भी आरम्भ हो जाती है। तब एक दूसरे को भोग का यंत्र बनाना चाहता है, तो दूसरा भी पहले को यंत्र बनाने की धुन में लग जाता है। इस कुचक्र से बचने का उपाय यही है कि परिवार का हर सदस्य अधिकार की अपेक्षा कर्त्तव्य पर अधिक ध्यान दे।

ऊपरलिखित विवेचन एवं विश्लेषण से यह निष्कर्ष एवं निचोड़ निकलता है कि गृहस्थाश्रम ही सर्वश्रेष्ठ एवं सर्वज्येष्ठ आश्रम है। क्योंकि इसके द्वारा सृष्टिसृजन होता है, वस्तुतः गृहस्थ एक तपोवन है। तभी तो 'गृहस्थ : एक तपोवन' नामक ग्रंथ की भूमिका में इसकी महत्ता निम्नलिखित शब्दों की गई है—

धन्यो गृहस्थाश्रमः कह कर हमारे ऋषि-मुनियों ने चारों आश्रमों में गृहस्थाश्रम ही धन्य कहे जाने योग्य है, ऐसा श्रुति ने कहा है। जिस प्रकार समस्त प्राणी माता का आश्रय पाकर जीवित रहते हैं उसी प्रकार सभी आश्रम गृहस्थाश्रम पर आधारित हैं। वस्तुतः किसी भी समाज या राष्ट्र के विकास के लिये परिवार संस्था का स्वस्थ, समर्थ व सशक्त होना आवश्यक है। यह सहजीवन के व्यावहारिक शिक्षण की प्रयोगशाला है।

लेखक द्वारा प्रकाशित एवं निःशुल्क वितरित पुस्तकों की सूची :–

1. रामचरितमानससार
2. गीतासार
3. उपनिषद्सार
4. सत्यार्थप्रकाशसार
5. भक्ति
6. सुखीजीवन
7. आत्मबोध
8. वेदवाणी
9. वैदिकसाहित्य
10. अमृतवाणी
11. महर्षि दयानंद
12. स्वामी विवेकानंद
13. शरणागति
14. वैदिक रामायण
15. क्या आप जानते हैं ?
16. शेंर-ओ-शायरी
17. ओ३म्

लेखक द्वारा अप्रकाशित पुस्तकों की सूची :–

1. वैदिक मनुस्मृति
2. वैदिक उपनिषद्वाणी
3. वैदिक दर्शनवाणी
4. वैदिक महाभारत
5. वैदिक गीता
6. अमर धर्मग्रंथ
7. अमर नीतिग्रंथ
8. पुराणपरिचय
9. ईश्वरसिद्धि
10. राष्ट्रभाषा हिन्दी
11. मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम
12. महावीर हनुमान
13. योगिराज श्रीकृष्ण
14. आदिशंकराचार्य
15. आचार्य चाणक्य
16. दस गुरु
17. आर्यसमाज के महामानव
18. स्वामी रामतीर्थ
19. संस्कार
20. गीतांजलि
21. आर्यसमाज
22. गायत्रीरहस्य
23. ज्ञानामृत
24. यज्ञ
25. संत
26. संतवाणी
27. आत्मकथा
28. भतृहरिशतक
29. ब्रह्मचर्य
30. गृहस्थ
31. सामान्य हिन्दी (भाग I-II)
    (सब कक्षाओं के लिये)
32. **Great Thoughts**
33. **General English**
    (Part I to V)
    (For All Classes)

कृपया पाठकगण इस ओर भी ध्यान दें कि इनकी निम्नलिखित पुस्तकों को इनकी वैब साईट **www.dpkapoorbooks.co.in** पर भी देखा जा सकता है।

1. अमृतवाणी
2. आर्यसमाज
3. आर्यसमाज के महामानव
4. आदिशंकराचार्य
5. आचार्य चाणक्य
6. अमर नीतिग्रंथ
7. अमर धर्मग्रंथ
8. दस गुरु
9. ईश्वरसिद्धि
10. गायत्रीरहस्य
11. ज्ञानामृत
12. गीतांजलि
13. क्या आप जानते हैं ?
14. मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम
15. महावीर हनुमान
16. महर्षि दयानंद
17. ओ३म्
18. पुराणपरिचय
19. राष्ट्रभाषा हिन्दी
20. संस्कार
21. संत
22. संतवाणी
23. स्वामी विवेकानंद
24. स्वामी रामतीर्थ
25. शरणागति
26. शेर-ओ-शायरी
27. सामान्य हिन्दी
    (भाग I-II)
    (सब कक्षाओं के लिये)
28. वैदिकसाहित्य
29. वैदिक उपनिषद्वाणी
30. वैदिक दर्शनवाणी
31. वैदिक रामायण
32. वैदिक महाभारत
33. वैदिक गीता
34. योगिराज श्रीकृष्ण
35. यज्ञ
36. आत्मकथा
37. भर्तृहरिशतक
38. ब्रह्मचर्य
39. गृहस्थ
40. वैदिक मनुस्मृति
41. **Great Thoughts**
42. **General English**
    (Part I to V)
    (For All Classes)